योगविद्या

वर्ष 12 अंक 10
अक्टूबर 2023

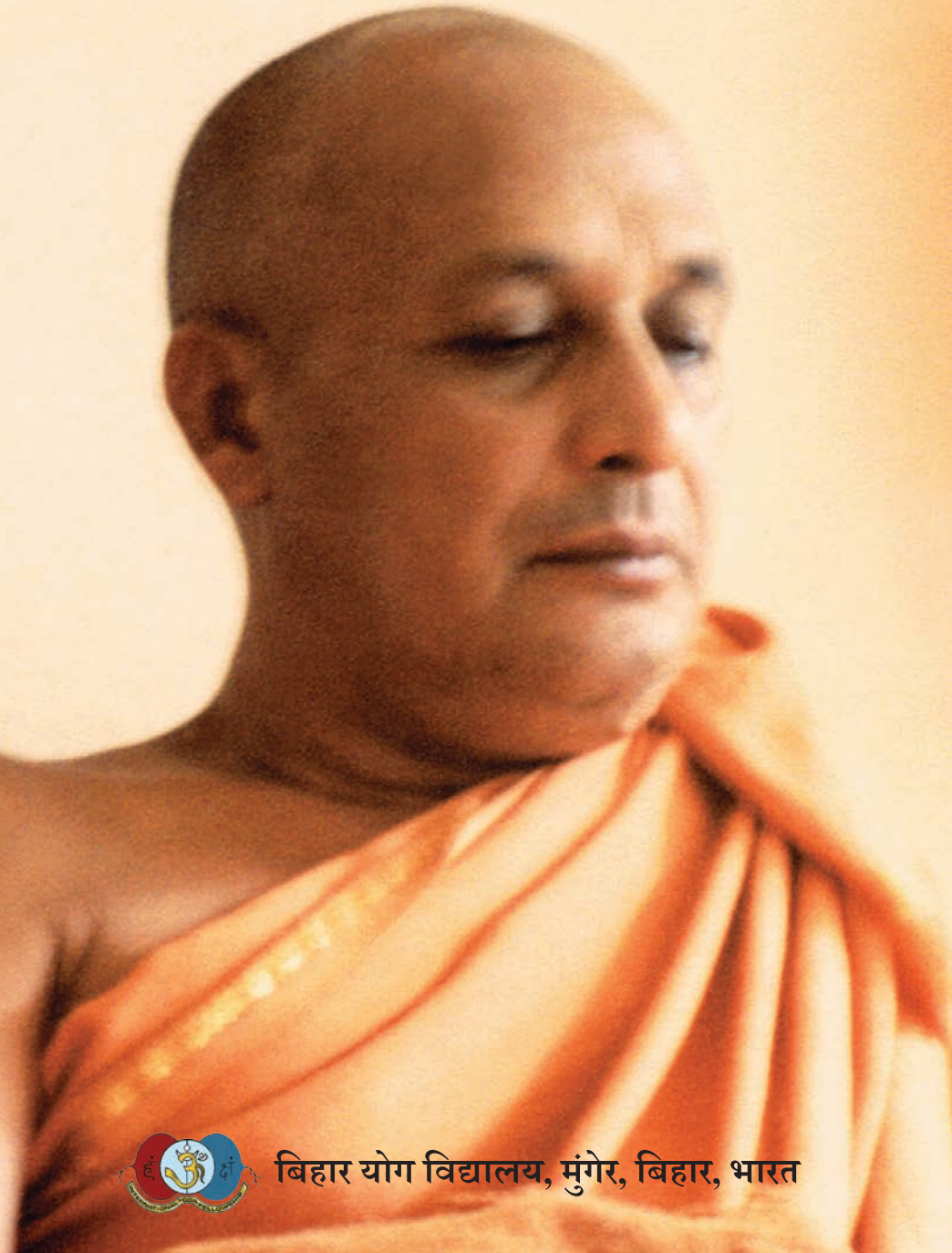

बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार, भारत

हरि: ॐ

योगविद्या का सम्पादन, मुद्रण और प्रकाशन स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संन्यासी शिष्यों द्वारा स्वास्थ्य लाभ, आनन्द और प्रकाश प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों के लिए किया जाता है। इसमें बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान के क्रियाकलापों की जानकारियाँ प्रकाशित की जाती हैं।

सम्पादक – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

योग विद्या मासिक पत्रिका है।

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, 811201, बिहार, द्वारा प्रकाशित।

थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, फरीदाबाद, 121007, हरियाणा में मुद्रित।

© Bihar School of Yoga 2023

उपयोगी संसाधन

वेबसाइट :

www.biharyoga.net
www.sannyasapeeth.net
www.satyamyogaprasad.net

एप्प : (Android एवं iOS उपकरणों के लिए)
Bihar Yoga
APMB
YOGA (अंग्रेजी पत्रिका)
YOGAVIDYA (हिन्दी पत्रिका)
FFH (For Frontline Heroes)

कुल पृष्ठ संख्या : 56 *(कवर पृष्ठों सहित)*

कवर एवं अन्दर के प्लेट:
श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

सत्यम् के प्रति उनके गुरु, स्वामी शिवानन्द जी के उद्गार

सत्यम्, तुमने ऋषिकेश में दिव्य जीवन संघ के लिए बहुत काम किया है, लेकिन अगर तुम यहाँ रहोगे तो 'बोनसाई' बनकर रह जाओगे। अब तुम यहाँ से जाओ, यह स्थान तुम्हारे लिए छोटा पड़ेगा। योग को द्वारे-द्वारे तीरे-तीरे फैलाओ। ये 108 रुपये लो, इसमें दाहिनी ओर केवल शून्य बढ़ाते जाओ, और कुछ नहीं करना है।

– स्वामी शिवानन्द सरस्वती

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर–811201, बिहार के लिए स्वामी शिवध्यानम् सरस्वती द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित
मुद्रक – थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, 18/35 माइलस्टोन, दिल्ली मथुरा रोड, फरीदाबाद–121007, हरियाणा
स्वामित्व – बिहार योग विद्यालय **सम्पादक** – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

योगविद्या

वर्ष 12 अंक 10 अक्टूबर 2023
(प्रकाशन का 61 वाँ वर्ष)

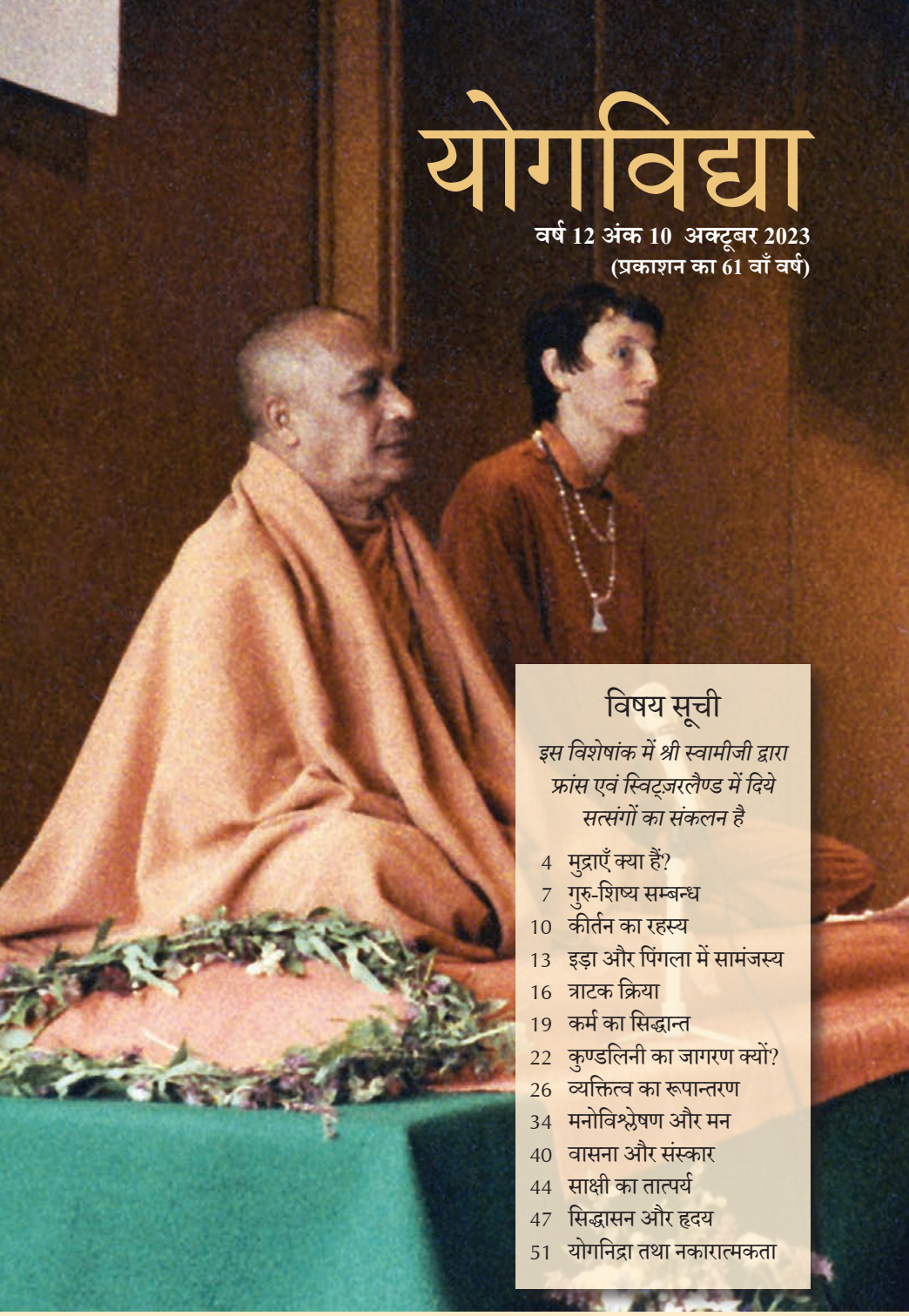

विषय सूची

इस विशेषांक में श्री स्वामीजी द्वारा फ्रांस एवं स्विट्ज़रलैण्ड में दिये सत्संगों का संकलन है

4 मुद्राएँ क्या हैं?
7 गुरु-शिष्य सम्बन्ध
10 कीर्तन का रहस्य
13 इड़ा और पिंगला में सामंजस्य
16 त्राटक क्रिया
19 कर्म का सिद्धान्त
22 कुण्डलिनी का जागरण क्यों?
26 व्यक्तित्व का रूपान्तरण
34 मनोविश्लेषण और मन
40 वासना और संस्कार
44 साक्षी का तात्पर्य
47 सिद्धासन और हृदय
51 योगनिद्रा तथा नकारात्मकता

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिक:। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन॥

मुद्राएँ क्या हैं?

मुद्राएँ मानसिक, भावनात्मक, भक्तियुक्त तथा सौन्दर्यबोधयुक्त अभिव्यक्तियाँ हैं। लोगों की समझ तथा उपयोग की दृष्टि से मुद्राएँ विभिन्न प्रकार की होती हैं। भारत में कला तथा आध्यात्मिक विद्या के क्षेत्र में मुद्राओं का महत्त्वपूर्ण स्थान है। भरतनाट्यम् में अनेक नृत्य-मुद्राएँ होती है। भक्तिमार्ग में भी समर्पण-भाव दर्शाने वाली अनेक मुद्राएँ होती हैं। ध्यान के लिए भी कुछ विशिष्ट मुद्राएँ होती हैं। योग में विपरीतकरणी, खेचरी, योग मुद्रा, शाम्भवी तथा नासिकाग्र मुद्राओं का समावेश है। इस प्रकार प्रायः हर क्षेत्र में मुद्राओं को महत्त्व दिया गया है।

बाहर से देखने पर मुद्राएँ मात्र शारीरिक स्थितियाँ मालूम पड़ती हैं जिनमें हाथ, नेत्र तथा समूचे शरीर का उपयोग होता है, परन्तु योगियों ने मुद्राओं को ऊर्जा के प्रवाह की विशेष स्थितियों के रूप में अनुभव किया है। इनके द्वारा व्यक्तिगत प्राणशक्ति का प्रवाह ब्रह्माण्डीय ऊर्जा के साथ सम्बद्ध हो जाता है। तंत्र में हाथ से की जाने वाली ध्यान मुद्राओं का एक महत्त्वपूर्ण समूह होता है। इनमें संभवतः सर्वश्रेष्ठ चिन्मुद्रा है। इसमें हथेलियों को छत की ओर खुली रखते हैं तथा तर्जनी को अँगूठे की जड़ से सटाकर रखते हैं, बाकी तीन उँगलियाँ सीधी रखी जाती हैं। चिन्मुद्रा आध्यात्मिक जीवन का प्रतीक है। मध्यमा, अनामिका तथा कनिष्ठा सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण का प्रतिनिधित्व करती हैं। प्रकृति इन्हीं तीन गुणों की सहायता से समूचे ब्रह्माण्ड की सृष्टि करती है।

आध्यात्मिक जीवन में आपको स्वयं को तीन गुणों से पृथक् रखना होता है। तर्जनी व्यष्टि चेतना या जीवात्मा को व्यक्त करती है। अँगूठा समष्टि चेतना का प्रतीक है। इस समष्टि चेतना को ब्रह्म अथवा परमात्मा भी कहा जाता है। जब आप अपनी व्यष्टि चेतना को त्रिगुणों से परे रखते हुए विश्व चेतना से संयुक्त करते हैं, तो इसे आध्यात्मिक जीवन का प्रतीक माना जाता है।

यह तो चिन्मुद्रा का प्रतीकात्मक विश्लेषण हुआ, परन्तु शरीर में ऊर्जा प्रवाह के परिप्रेक्ष्य में इसका दूसरा महत्त्व होता है। किर्लियन फोटोग्राफी के प्रयोगों द्वारा यह पाया गया है कि ऊँगलियों के पोरों से बड़ी मात्रा में ऊर्जा बाहर निकलती है। अब यदि आप तर्जनी को अँगूठे से सटा दें तो ऊर्जा का एक परिपथ बनता है, जिससे उसका बिखराव नहीं होता और वह लौटकर शरीर और मस्तिष्क में पहुँचती है। हमारे हाथों का सम्बन्ध मस्तिष्क से होता है। इसलिए अँगूठे और तर्जनी को मिलाने से जो परिपथ बनता है उसका मस्तिष्क पर प्रबल प्रभाव पड़ता है। जब दोनों हाथों को चिन्मुद्रा की स्थिति में रखा जाता है तो मस्तिष्क के दोनों गोलार्द्ध नियंत्रित होने लगते हैं।

चिन्मुद्रा से मिलती-जुलती एक अन्य मुद्रा और है जिसे ज्ञानमुद्रा कहते हैं। इसमें हथेलियों को घुटनों पर औंधे रखते हैं। योनिमुद्रा में अँगूठे से अँगूठा और तर्जनी से तर्जनी सटाते हैं और शेष तीन उँगुलियों को आपस में गूँथ लेते हैं। योनिमुद्रा शक्ति का प्रतीक है। इसके अतिरिक्त एक मुद्रा और है जिसे प्रणाम मुद्रा कहते हैं। इसमें दोनों हथेलियों को आपस में सटा लेते हैं। दोनों हाथों की दसों अँगुलियाँ सामने की ओर तनी रहती हैं और हथेलियों को हृदय के पास रखते हैं। इसे अभिवादन अथवा नमस्कार मुद्रा भी कहते हैं।

एक महत्त्वपूर्ण मुद्रा और भी है जिसे योगी ध्यान के पूर्व श्वास प्रवाह के संतुलन के लिये प्रयुक्त करते हैं। बहुधा ध्यान के समय मन अनियंत्रित हो जाता है, पर उसका कारण पता नहीं चलता है। इसका कारण असंतुलित श्वास-प्रवाह हो सकता है। जब श्वास का प्रवाह पिंगला नाड़ी में होता है तब मन चंचल होता है, क्योंकि उसका सम्बन्ध मस्तिष्क के बायें गोलार्द्ध से रहता है जो रजोगुण प्रधान है। कभी-कभी हम बड़े शान्त और तनावरहित होते हैं, मानो हमने कोई प्रशांतक द्रव्य ले रखा हो। मन कुछ नहीं करना चाहता, मानो उसे नींद आ रही हो। इसे भी उपयुक्त अवस्था नहीं कह सकते। मन की यह स्थिति उस समय होती है जब श्वास का प्रवाह इड़ा नाड़ी में रहता है। इड़ा का सम्बन्ध मस्तिष्क के दाहिने गोलार्द्ध से होता है, जो तमोगुण अथवा निष्क्रियता का केन्द्र है।

अब प्रश्न यह उठता है कि श्वास के प्रवाह को कैसे नियंत्रित किया जाय। प्रत्येक साधक को इसका समुचित ज्ञान होना चाहिए। जब आप देखें कि श्वास का प्रवाह दाहिनी नासिका में है, तो योगदण्ड को दाहिनी कांख में दबाइए या बाँयें हाथ की मुट्ठी दाहिनी बगल में रखकर दाहिने हाथ को दबाइये। कुछ ही मिनटों में बायीं नासिका खुल जायेगी। इसी प्रकार यदि श्वास के प्रवाह को बाँयें

से दाहिने नासिकारंध्र में लाना हो, तो दाहिने हाथ की मुट्ठी को बाँयीं बगल में रख बाँयें हाथ को दबाइये। थोड़े ही समय में दाहिने नासिका रंध्र में श्वास का प्रवाह होने लगेगा। इस मुद्रा को दोनों हाथों को दोनों बगलों के नीचे रखकर भी कर सकते हैं। इससे दोनों नाड़ियों में श्वास का प्रवाह संतुलित होता है। जब दोनों नासिकारंध्रों में श्वास का प्रवाह समान हो तो तात्पर्य यह है कि हमारी सुषुम्ना नाड़ी क्रियाशील है। इस अवस्था में ध्यान सहज होता है और साधक को कम समस्याओं का सामना करना पड़ता है। प्राणायाम द्वारा भी श्वास का संतुलन स्थापित हो सकता है, परन्तु इसमें कुछ अधिक समय लगता है।

ऊर्जा परिपथों को प्रभावित करने वाली मुद्राओं के अतिरिक्त कुछ अन्य मुद्राएँ ऐसी भी होती हैं जो सीधे चक्रों को क्रियाशील करती हैं। उदाहरण के लिये, शाम्भवी मुद्रा में ऊर्जा का भ्रूमध्य में केन्द्रीकरण हो जाता है जो आज्ञाचक्र का स्थान है। नासिकाग्र मुद्रा में ऊर्जा नासिका के अग्र भाग में केन्द्रित होती है। इससे कुछ विशेष स्नायु, जिनका घ्राणेन्द्रिय पर नियंत्रण होता है, प्रेरित होते हैं और मूलाधार चक्र जाग्रत होता है।

विपरीतकरणी मुद्रा हठयोग तथा क्रियायोग दोनों में मिलती है। यह ऊर्जा के अधो प्रवाह को बदल देती है। शास्त्रों में इस बात का स्पष्ट उल्लेख पाया जाता है कि चन्द्रमा अर्थात् बिन्दु चक्र से अमृत झरता है, किन्तु उसे सूर्य अर्थात् मणिपूर चक्र सोख लेता है। इससे विकार उत्पन्न होता है, क्षय और मृत्यु होती है। विपरीतकरणी मुद्रा में अमृत झरने की प्रक्रिया उल्टी हो जाती है तथा जो ऊर्जा सामान्यतः बाह्य कार्यकलापों में खर्च होती है वह मस्तिष्क के उच्चतर केन्द्रों की ओर प्रवाहित होने लगती है।

मुद्राओं को बौद्धिक स्तर पर समझना ही पर्याप्त नहीं है। आपको स्वयं अपने लिए इनका अभ्यास करना चाहिए, क्योंकि किंचित अभ्यास भी व्यापक सैद्धान्तिक जानकारी की अपेक्षा बेहतर होता है।

– सितम्बर 1979, ज़िनाल, स्विट्ज़रलैंड

गुरु-शिष्य सम्बन्ध

जब आप गुरु से मंत्र लेने का निश्चय करते हैं तब उनसे आपका सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। सर्वप्रथम यह सम्बन्ध आत्मिक स्तर पर होता है, परंतु धीरे-धीरे भावनात्मक तथा मानसिक स्तरों पर उतरता है। इसके बाद ही आप उनके पास जाकर मंत्र दीक्षा की याचना करते हैं। मंत्र दीक्षा के बाद आपके लिए एक कार्य करने को रह जाता है, वह है अपने दीक्षा मंत्र का निरंतर जप। कुछ समय बाद आपका मंत्र सम्पूर्ण व्यक्तित्व पर छा जाता है।

गुरु-भक्ति एक स्वतःस्फूर्त प्रक्रिया होती है। जिस प्रकार आप किसी व्यक्ति को प्रेम या घृणा करना नहीं सिखा सकते, उसी प्रकार आपको गुरु के प्रति भक्ति भी नहीं सिखाई जा सकती। यदि आपमें गुरु के प्रति श्रद्धा-भक्ति नहीं है, तो फिर कुछ भी नहीं किया जा सकता। इसके लिए कोई रामबाण औषधि भी नहीं होती। गुरु भक्ति को अनुकूल, स्वाभाविक और सहज होना चाहिए। यद्यपि आध्यात्मिक जीवन में घनिष्ठ गुरु-शिष्य सम्बन्ध अपरिहार्य है, तथापि यह हर समय संभव भी नहीं होता। गुरुभक्ति हर व्यक्ति के भीतर

एक जैसी नहीं होती। यह किसी में बहुत कम, तो किसी में अधिक भी हो सकती है।

अनेक शिष्यों की गुरुभक्ति मात्र औपचारिक स्तर पर होती है। इस सम्बन्ध की गहराई शिष्य के विकास के स्तर के अनुपात में कम-अधिक होती है। मैं जीवन में तीन बार शिष्य बना। जब मैं दस वर्ष का था तथा माता-पिता के साथ रहता था, मैं एक पचीस वर्षीय महिला संत के संपर्क में आया। उसने मुझे कुछ आध्यात्मिक शिक्षा दी। मैं उसका प्रशंसक था, क्योंकि मुझे उसके चेहरे पर एक आध्यात्मिक तेज दिखता था।

कुछ वर्षों बाद मैंने घर छोड़ दिया और गुरु की तलाश में इधर-उधर भटकता रहा। मैं पश्चिम भारत में स्थित एक आश्रम में पहुँचा। मेरे वहाँ जाने का कारण यह था कि मेरी एक बहन वहाँ क्रियायोग सीख रही थी। उसे लगता था कि उसके गुरु मेरे भी गुरु हो सकते हैं। यह महात्मा सत्तर वर्ष के बड़े भले व्यक्ति थे। वे कम बोलते तथा मुझे बहुत चाहते थे। इसके बावजूद मुझे ऐसा लगा कि वे वह नहीं हो सकते, जिनकी मुझे तलाश है।

कुछ सप्ताह बाद मैंने वह आश्रम छोड़ दिया और पुनः गुरु की तलाश में भटकने लगा। मुझे ऋषिकेश के एक संत का पता मालूम था, इसलिए मैं उनसे मिलने के लिए ऋषिकेश पहुँचा। ये महात्मा संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित थे तथा शिवानन्द आश्रम के पास ही रहते थे। जब मैंने उनसे शिष्य बनने की इच्छा प्रकट की, तो उन्होंने मुझे शिवानन्द आश्रम जाने की सलाह दी। मैं अगले दिन प्रातःकाल शिवानन्द आश्रम पहुँच गया और पूज्य स्वामी शिवानन्दजी के दर्शन किये। उस समय उनकी अवस्था लगभग पचास वर्ष रही होगी। जैसे ही मैंने उन्हें देखा, मुझे ऐसा लगा कि मैं अपनी मंजिल पर पहुँच गया हूँ। मेरा यह अनुमान सही निकला।

मैं दीर्घकाल तक उनके साथ रहा, परंतु मैं कभी भी भावुक, बेचैन अथवा व्यथित नहीं हुआ। मेरी उनके प्रति भक्ति तथा समर्पण इतना गहरा था कि मैं लगातार दिन-रात हर तरह का काम करता था। मैं इतना व्यस्त रहता था कि मुझे भोजन तथा सोने की सुध भी नहीं रहती थी। मैं आश्रम के निर्माण कार्य में डूब गया, परन्तु स्वामीजी आश्रम के झमेले में नहीं पड़ना चाहते थे। जब भी कोई कमरा बनकर तैयार होता, मैं उनसे उसे देखने और आशीर्वाद देने की प्रार्थना करता था। हर बार उनका उत्तर यही रहता कि एक माया और बढ़ गई तथा इसके साथ ही एक सूक्ष्म बंधन भी बढ़ गया। अनेक वर्षों तक लगन

और भक्ति के साथ मैं सभी तरह का काम करता रहा। मेरा वह जीवन गुरु के प्रति कर्मभक्ति का काल था।

गुरु के नाम की रट तथा उनके प्रति भक्तिभाव के दिखावे का क्या अभिप्राय है, यदि शिष्य स्वयं क्षुद्रताओं के दलदल में पड़ा हुआ हो। यदि गुरु का आश्रम निर्जन है, उसका बगीचा सूखा, मुरझाया पड़ा है, तो क्या आप इसे भक्ति कहेंगे? भक्ति वास्तविक होनी चाहिए। जब मेरे गुरुदेव का जन्मदिन आता था, शिष्यगण उनकी पूजा-अर्चना के लिए दौड़ पड़ते थे। परन्तु मैं उनके पास जाने की अपेक्षा रसोई में काम करता था। जब मेरे गुरुभाई मुझे फटकारते हुए कहते थे कि मैं गुरु के प्रति भक्ति भाव क्यों नहीं प्रदर्शित करता, तो उन्हें मेरा दो टूक उत्तर यही होता कि उनकी भक्ति भावनात्मक है, जबकि मेरी ठोस और वास्तविक है।

गुरु-शिष्य सम्बन्ध अनेक प्रकार के होते हैं। तंत्र में यह सम्बन्ध पूर्ण होता है। तांत्रिक व्यवस्था में एक गुरु और शिष्य के मध्य सभी प्रकार के सम्बन्ध हो सकते हैं तथा किसी भी रूप में हो सकते हैं। किन्तु यदि आप गृहस्थ हैं तो यह संभव नहीं होता है। किसी भी पति, पत्नी, पुत्र अथवा पुत्री के कुछ अनिवार्य सामाजिक और भावनात्मक दायित्व होते हैं। ऐसे गृहस्थ शिष्यों को अपने सामाजिक तथा पारिवारिक दायित्वों तथा गुरुभक्ति के बीच सामंजस्य और संतुलन स्थापित करना चाहिए।

अतः प्रत्येक व्यक्ति के गुरु के साथ व्यावहारिक सम्बन्ध होने चाहिए। यदि आप गृहस्थ हैं तो गुरु के पास जाइये, उनसे मंत्र लीजिये तथा 'हरि: ॐ' कहकर चले आइए। घर आकर नियमित रूप से अपने मंत्र का जप कीजिये। जप के प्रारम्भ तथा अंत में गुरु का स्मरण कीजिये। गुरु के साथ अपने सम्बन्ध को यहीं तक सीमित रहने दीजिये।

– 5 सितम्बर 1980, शामराँद, फ्रांस

कीर्तन का रहस्य

कीर्तन योग का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। जिस प्रकार शक्कर के बिना चाय और 'लवण बिना बहु व्यंजन' अपूर्ण है, उसी प्रकार कीर्तन रहित योग भी अपूर्ण है। कीर्तन का सम्बन्ध धर्म से नहीं है, बल्कि यह नादयोग का एक अंग है जिसमें आप ध्वनि तरंगें उत्पन्न कर चैतन्य हो उनका अनुसरण करते हैं। कीर्तन द्वारा आप स्वयं को शरीर तथा बाह्य वातावरण से दूर ले जा सकते हैं।

जब आप कीर्तन करते हैं तो मानो भावनाओं के जेट वायुयान से यात्रा करते हैं। इससे आपका मन से संघर्ष नहीं होता। इस रहस्य को भारत के लोग अच्छी तरह जानते हैं। यदि मैं भारत में नादयोग पर कोई सेमिनार आयोजित करूँ जिसमें कीर्तन किया जाय, तो एक लाख से कम लोग उसमें भाग नहीं लेंगे, क्योंकि वे कीर्तन के रहस्य को जानते हैं। राजयोग में आपको मन के साथ संघर्ष करना पड़ता है, किन्तु कीर्तन में आप मन की अनदेखी कर आगे बढ़ जाते हैं।

पाँच शताब्दी पूर्व भारत में चैतन्य महाप्रभु नामक एक संत हुए थे। चूँकि वे पश्चिम के लोगों की तरह गोरे थे, इसलिये उन्हें गौरांग भी कहा जाता था। वे अपने समय के महान् प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति थे, परन्तु वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि आध्यात्मिक जीवन के मार्ग में बुद्धि एक रोड़ा है। उन्होंने स्वयं में भक्ति भावना विकसित की और इसके लिए कीर्तन का रास्ता अपनाया। कीर्तन

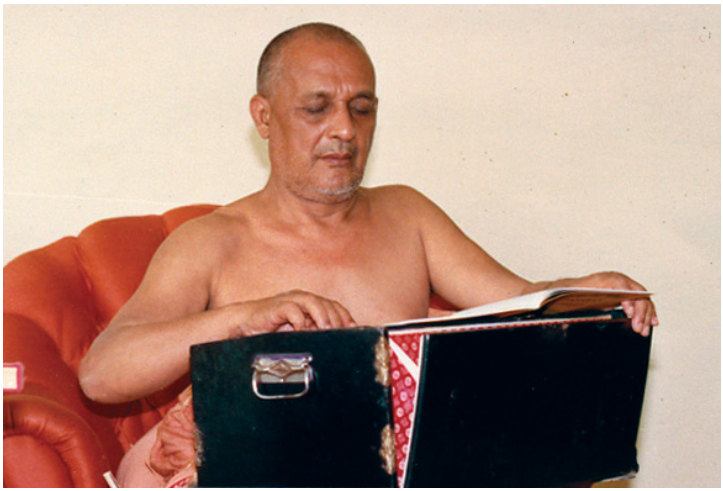

गाते-गाते वे भावाविष्ट हो जाते तथा 'हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे' घण्टों दुहराते रहते थे। जहाँ से भी वे निकलते, ग्रामीणों की नाचती-गाती भीड़ उनके पीछे चलती थी। यह पूरा दल एक गाँव से दूसरे गाँव पहुँचता था।

चैतन्य महाप्रभु के बाद योग के विभिन्न अंगों के साथ कीर्तन जुड़ता गया। योग के कठिन अभ्यासों और साधनाओं के साथ मधुर कीर्तन रूपी नादयोग का अभ्यास सोने पर सुहागे का कार्य करता है। कीर्तन की कुछ धुनें सीखकर समूह में उनका अभ्यास कीजिये, अकेले नहीं। कीर्तन को प्रभावी बनाने के लिए हारमोनियम, मृदंग और मंजीरे का उपयोग करना चाहिए। इन वाद्यों के साथ अपने हृदय की भावना और श्रद्धा का भी संपुट कीजिये। कीर्तन के द्वारा आप स्वयं को कुण्ठाओं तथा ऊर्जा के अवरोधों से मुक्त कर सकते हैं।

जब आप कीर्तन में सम्मिलित होते हैं तो यह पूरी तरह भूल जाइये कि आप वैज्ञानिक, इंजीनियर, डॉक्टर, प्रोफेसर, उच्च अधिकारी अथवा भद्र महिला हैं। ये व्यक्ति की सीमाएँ हैं। इन्हें आपकी व्याख्या नहीं कहा जा सकता। ये ऊपर से आरोपित उपाधियाँ हैं। जब आप कहते हैं कि आप एक प्रतिभा सम्पन्न अधिवक्ता, डॉक्टर अथवा बड़े घराने की भद्र महिला हैं, तो इसका यह तात्पर्य हुआ कि आप अपने ऊपर कुछ सीमाएँ आरोपित कर रहे हैं। ये सीमाएँ आपको कीर्तन में पूरी तरह खुलने नहीं देंगी। जब आप कीर्तन में जायें तो अपने अहम्, पद की गरिमा, लोगों से दूरी आदि सब कुछ घर पर छोड़ दें। अपने को कुछ भी न मानते हुए कीर्तन के प्रवाह में बहने दें। तब और केवल तब ही आप अपनी कुण्ठाओं का अतिक्रमण कर पायेंगे।

याद रखिये, कीर्तन कोई बौद्धिक योग नहीं है। कीर्तन से उत्पन्न हर ध्वनि तरंग आपकी चेतना की गहराई में उतरती है। बुद्धिजीवी कीर्तन को यदि बुद्धि के माध्यम से समझने की कोशिश करें तो उनके पल्ले कुछ नहीं पड़ेगा, क्योंकि कीर्तन का प्रयोजन व्यक्ति के भावनात्मक पक्ष को छूना है। यद्यपि भावनाओं को न तो समुचित रूप से समझा जाता है और न ही उनका उपयोग किया जाता है तथापि वे व्यक्ति के हाथ में अत्यन्त प्रभावी उपकरण मानी जाती हैं। बुद्धि के द्वारा आप कभी भी चेतना की गहराई में नहीं उतर सकते और न ही उसे पकड़ सकते हैं। हाँ, बुद्धि के द्वारा ब्रह्म, जगत्, सत्य आदि की सैद्धान्तिक जानकारी एकत्र कर सकते हैं, परन्तु इनका अनुभव कदापि नहीं कर सकते।

ज्ञान और अनुभव में बड़ा अन्तर है। मैं आपको एक मजेदार घटना बताता हूँ। एक बार मैं अपने शिष्य के साथ वायुयान से ऑस्ट्रेलिया जा रहा था। मेरी

मुलाकात एक विद्वान् अंग्रेज प्रोफेसर से हुई। उन्होंने भारतीय मिठाइयों पर एक शोध-प्रबन्ध तैयार कर अपने विश्वविद्यालय में प्रस्तुत किया था। उनका ग्रन्थ बड़ा दिलचस्प तथा तथ्यों से भरा था। थोड़ी देर बाद हम लोग भोजन करने की तैयारी में लग गये। मुझे हवाई कम्पनी ने भोजन का डिब्बा दिया, जिसमें थी भारत की प्रसिद्ध मिठाई, रसगुल्ले। जब मैंने भोजन प्रारम्भ किया तो अपने शिष्य को कुछ रसगुल्ले देकर प्रोफेसर महोदय के पास भेजा। उन्होंने रसगुल्ले के स्वाद का अनुभव किया, फिर मेरे शिष्य से पूछा, 'यह कौन-सी मिठाई है?' मेरा शिष्य थोड़ा स्पष्ट भाषी है। उसने कहा, 'अपने शोध-प्रबन्ध में देखिये।'

मैं ज्ञान और अनुभव में अन्तर स्पष्ट कर रहा हूँ। यह निर्विवाद है कि उस प्रोफेसर को भारतीय मिठाइयों की गहरी सैद्धान्तिक जानकारी थी, परन्तु मिठाइयों का उसका अनुभव शून्य था। पुनः याद रखिये, बुद्धि ज्ञान का माध्यम है, परन्तु अनुभव का माध्यम भावना है। यदि आप दिव्यता और शान्ति का अनुभव करना चाहते हैं तो आपको अपने व्यक्तित्व के भावनात्मक आयाम का विकास करना होगा। यदि आपका भावनात्मक पक्ष अविकसित होगा तो आप मन्दिर अथवा गिरजाघर में भले ही लगातार कई दिनों तक ईश्वर पर व्याख्यान दें, वह आपसे दूर ही बना रहेगा। किन्तु यदि आप भावाविष्ट हो तो ईश्वर का नामोल्लेख होते ही आप में भाव आ जायेगा और उसे अपने भीतर देखेंगे। भावना वह नेत्र है जिससे आप उच्च प्रेम और चेतना का अनुभव करते हैं।

यह अत्यन्त आवश्यक है कि राजयोगी और हठयोगी अपने भावनात्मक पक्ष को विकसित करें। इसकी अनेक युक्तियाँ हैं, जिनमें कीर्तन सबसे अधिक सुरक्षित, सस्ता और शीघ्र फलदायी साधन है। पन्द्रह-बीस लोगों के समूह में बैठिये। कीर्तन की धुन चुनिए और गाने वाले एक व्यक्ति का अनुसरण कीजिये। जब वह एक पंक्ति गा चुके, तब बाकी सब लोग उसे दुहराएँ। कीर्तन में अन्य वाद्यों के साथ मृदंग आवश्यक है, क्योंकि मृदंग की आवाज का तत्काल प्रभाव मन की तरंगों और रक्त-संचार पर पड़ता है। वास्तव में मृदंग की लय और ध्वनि, शरीर और मन की आंतरिक मालिश करती है।

करीब आधा घण्टा तक कीर्तन करने के बाद शान्तिपूर्वक ध्यान कीजिये। यदि सचमुच आपने कीर्तन में स्वयं को पूरी तरह डुबाया था तो आपका ध्यान निर्विघ्न होगा। ध्यान के मार्ग में आपको किसी भी प्रकार की बाधा का अनुभव नहीं होगा। आपका आन्तरिक मार्ग प्रशस्त होगा।

– 9 सितम्बर 1980, ज़िनाल, स्विट्ज़रलैंड

इड़ा और पिंगला में सामंजस्य

जिस प्रकार बिजली के तारों में से विद्युतधारा प्रवाहित होती है, उसी प्रकार मानव शरीर में नाड़ियों के माध्यम से ऊर्जा प्रवाहित होती रहती है। इस ऊर्जा प्रणाली में प्राणिक तथा मानसिक ऊर्जा प्रवाहित होती है जिनका प्रवाह दो महत्त्वपूर्ण नाड़ियों, इड़ा और पिंगला के माध्यम से होता है। ये नाड़ियाँ मूलाधार चक्र से प्रारम्भ होती हैं तथा मेरुदण्ड से होती हुई आज्ञाचक्र तक जाती हैं। मेरुदण्ड के बीचों बीच सुषुम्ना नाड़ी भी प्रवाहित होती है, जो मूलाधार चक्र से आज्ञा चक्र तक तथा वहाँ से सहस्रार चक्र तक जाती है। परन्तु अधिकतर लोगों में सुषुम्ना नाड़ी प्रसुप्त होती है।

इस प्रकार हमारे शरीर में इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना, तीन प्रमुख नाड़ियाँ हैं। इन्हें मनस्, प्राण तथा आत्मा कहते हैं और आधुनिक वैज्ञानिक भाषा में उन्हें क्रमशः परानुकंपी, अनुकंपी एवं केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र कहा जाता है। पिंगला नाड़ी दाहिनी ओर होती है तथा समूचे शरीर के विभिन्न अंगों को प्राणशक्ति की आपूर्ति करती है। इड़ा बाँयीं ओर होती है तथा यह शरीर में मनःशक्ति की आपूर्ति करती है। मनःशक्ति के कारण ही मनुष्य को देश, काल तथा वस्तु की चेतना रहती है। सुषुम्ना आध्यात्मिक ऊर्जा का संवहन करती है। यह अन्य दो ऊर्जा प्रवाहों से आगे चली जाती है। वर्तमान में चूँकि सुषुम्ना नाड़ी सुप्तावस्था में है, समूचे शरीर में ऊर्जा की आपूर्ति इड़ा और पिंगला द्वारा होती है।

शरीर के समस्त अवयव और संस्थान इन नाड़ियों से सीधे सम्बन्धित हैं। जहाँ इनका उद्गम (मूलाधार चक्र) तथा अन्त (आज्ञाचक्र) होता है, उन दोनों के बीच चार अन्य बिन्दुओं पर ये एक-दूसरे को काटती हैं। इनका प्रथम मिलन बिन्दु स्वाधिष्ठान चक्र है, जो जननांग के पीछे मेरुदण्ड में स्थित है। दूसरा मणिपूर चक्र (नाभि के पीछे), तीसरा अनाहत (हृदय के पीछे) और चौथा विशुद्धि, कंठकूप के पीछे मेरुदंड में स्थित है। इन चार चक्रों से प्राण तथा चित्त शक्ति की आपूर्ति पूरे शरीर में होती है। यदि ऊर्जा का पर्याप्त प्रवाह हो, परन्तु चक्र सही ढंग से कार्य नहीं करें, तो शरीर के विभिन्न अंगों में ऊर्जा की समुचित आपूर्ति नहीं हो पाती। इसलिए योगाभ्यास द्वारा इड़ा और पिंगला की शुद्धि होनी चाहिये, जिससे चारों चक्र अच्छी तरह कार्य कर सकें।

प्रत्येक व्यक्ति को अपनी सुषुम्ना नाड़ी को जाग्रत करने का प्रयास करना चाहिये। यदि सुषुम्ना सक्रिय है तो ध्यान स्वतः लग जाता है। यदि आप अपने कमरे में प्रकाश लाना चाहते हैं तो आपको उसे बिजली के खंभे से जोड़ना होगा। इसी प्रकार कुण्डलिनी जागरण के पूर्व सुषुम्ना का सक्रिय होना जरूरी है। जागने पर कुण्डलिनी का ऊर्ध्वगमन सुषुम्ना से होता है। कुण्डलिनी आज्ञाचक्र में अन्य दो नाड़ियों से मिल जाती है तथा प्राण और चित्त शक्ति का अपकर्ष हो जाता है। जब अधिक शक्तिशाली ऊर्जा प्रवाहित होने लगती है तब छोटे जेनरेटर बन्द हो जाते हैं। इस शक्तिशाली प्रवाह से मस्तिष्क के अनेक प्रसुप्त केन्द्र सक्रिय होने लगते हैं तथा शरीर के विभिन्न अंगों को ऊर्जा मिलने लगती है।

अभी हम सुबह से शाम तथा शाम से सुबह तक जितने भी कार्य करते हैं, वे हमारी इड़ा तथा पिंगला नाड़ियों में प्रवाहित होने वाली ऊर्जा की परस्पर प्रतिक्रियाओं की अभिव्यक्ति होते हैं। जब इनका सन्तुलन बिगड़ता है तो शरीर में अनेक रोग उत्पन्न होते हैं। यदि प्राण ऊर्जा के प्रवाह में गड़बड़ी आती है तो शारीरिक बीमारियाँ प्रकट होती हैं। इसी प्रकार यदि चित्त शक्ति के प्रवाह में त्रुटि उत्पन्न होती है तो मानसिक व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं। याद रखिये कि व्यवधान अकेले इड़ा अथवा पिंगला में उत्पन्न नहीं होते। यदि एक नाड़ी का प्रवाह बाधित होता है तो इससे दूसरी नाड़ी का प्रवाह भी प्रभावित हुए बिना नहीं रहता। इस प्रकार कोई भी रोग पूरी तरह शारीरिक अथवा मानसिक नहीं कहा जा सकता। प्रत्येक बीमारी में शारीरिक और मानसिक तत्त्व छिपे रहते हैं।

सभी बीमारियों को या तो मनोकायिक या कायमानसिक श्रेणी में रखा जा सकता है। जब प्राण प्रवाह त्रुटिपूर्ण होता है, तो इससे मानसिक ऊर्जा का प्रवाह भी प्रभावित होता है। इससे जो बीमारियाँ उत्पन्न होती हैं, उन्हें कायमानसिक कहते हैं। इसी प्रकार जब इड़ा का प्रवाह गड़बड़ाता है, तो

उससे पिंगला का प्रवाह भी प्रभावित होता है। इसके परिणामस्वरूप होने वाली बीमारियों को मनोकायिक कहते हैं।

प्राण तथा चित्त शक्ति मस्तिष्क के दोनों गोलार्द्धों को नियंत्रित करती हैं, अतः यह आवश्यक है कि इनके प्रवाहों के बीच स्वस्थ संतुलन रखा जाये। प्राण प्रवाह मस्तिष्क के बायें गोलार्द्ध को तथा मनस् प्रवाह दाहिने गोलार्द्ध को नियंत्रित करता है। जिस प्रकार प्राण और मनस् एक साथ कार्य नहीं करते, उसी प्रकार ये दोनों गोलार्द्ध भी एक साथ कार्यरत नहीं होते। यदि प्राण और मनस् एक साथ कार्य करने लगें, तो सुषुम्ना जाग्रत हो जायेगी।

हमारी आधुनिक संस्कृति के स्वरूप तथा जीवनशैली के कारण प्राण तथा मनस्, दोनों का प्रवाह अव्यवस्थित हो गया है। हमारे विचार, हमारी भावनाएँ, वासनाएँ एक ओर हमारे मनस् प्रवाह को अवरुद्ध करती हैं, तो दूसरी ओर प्रदूषित वायु, भोजन, वनस्पति, जीव-जन्तु तथा वातावरण प्राणों के प्रवाह को प्रभावित करते हैं। इसलिए यह अत्यावश्यक है कि हम एक स्वस्थ दृष्टिकोण अपनाएँ, ताकि हम मनोवैज्ञानिक समस्याओं से उद्वेलित नहीं हों।

मन पर विजय पाने के लिए गहरी छानबीन करनी होगी। प्रारम्भ में यह अन्तर्मौन की सहायता से किया जा सकता है। थोड़े परीक्षण के बाद आप इसे प्राप्त कर सकते हैं। सभी अनुभूतियाँ तथा जीवन के प्रभाव मन में संचित रहते हैं। यदि आप अपने मन में सामंजस्य स्थापित कर लें तो अशान्ति दूर हो जायेगी। तब आप भय और चिंता जैसे भावों से उत्पीड़ित नहीं होंगे, आप सभी परिस्थितियों में शान्त और स्थिर रहेंगे।

जिस प्रकार मन की एक संरचना होती है, उसी प्रकार प्राण भी पाँच प्रमुख कारकों से बना है। हमारे भौतिक शरीर में जीवनशक्ति शरीर के विभिन्न क्षेत्रों में अपने कार्यों के अनुसार प्राण, अपान, उदान, समान तथा व्यान में विभक्त होती है। इनमें से प्राण तथा अपान सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और शक्तिशाली होते हैं। जब प्राण तथा अपान के बीच सामंजस्य और संतुलन रहता है, तो उच्चतर प्राणों का विस्फोट होता है। योग में स्वास्थ्य की यही अवधारणा है।

योग यह नहीं कहता कि समस्त बीमारियाँ पूर्णतः मानसिक अथवा शारीरिक होती हैं। योग में कहा गया है कि सभी बीमारियों की जड़ें शरीर एवं मन में ही होती हैं। इसलिए जब भी किसी बीमारी का उपचार करना हो तब उसके लिए हठयोग तथा राजयोग का संतुलित अभ्यास होना चाहिए।

– 16 मई 1980, शिवानन्द आश्रम, पेरिस

त्राटक क्रिया

योग तथा सूफी परम्परा में एक महत्त्वपूर्ण तथा अत्यन्त शक्तिशाली अभ्यास है जिसे त्राटक कहा जाता है। सूफी मत योग की ही एक दार्शनिक शाखा है, जिसका उद्गम इस्लाम धर्म से हुआ है। अनेक शताब्दियों से योगियों और सूफियों के बीच विचारों का आदान-प्रदान होता रहा है। जिस प्रकार योगी कुण्डलिनी, चक्रों तथा एकाग्रता की युक्तियों की चर्चा करते हैं, उसी प्रकार सूफी भी करते हैं।

त्राटक का अर्थ किसी वस्तु को देर तक अपलक देखना होता है। यदि आप किसी मण्डल पर ध्यान करना चाहते हैं तो आपको त्राटक का अभ्यास करना होगा, तभी आपका ध्यान सफल होगा। मण्डल को कुछ देर अपलक स्थिर नेत्रों से देखिये। इसके बाद दृष्टि को मण्डल से कुछ ऊपर अथवा फर्श की ओर मोड़ लीजिये। मण्डल की पृष्ठभूमि सफेद रखिये। जैसे ही आप मण्डल पर से दृष्टि हटायेंगे, उसकी प्रतिछवि आपको सफेद पृष्ठभूमि पर दिखेगी। प्रतिछवि

मात्र एक-आध सेकेंड तक स्थिर रहेगी, परन्तु जैसे-जैसे आपके अभ्यास में परिपक्वता आयेगी, प्रतिछवि अधिक समय तक टिकेगी। जब प्रतिछवि का दिखना बन्द हो जाये तो दृष्टि को पुनः मण्डल पर टिकाइये।

यदि आपको प्रतिछवि को देखने में असुविधा महसूस हो तो त्राटक की अन्य युक्ति का प्रयोग कीजिये। दिन में जब आकाश साफ हो, सूर्य की ओर पीठ कर बैठ जाइये। किसी आरामदायक ध्यान के आसन में बैठकर शरीर को एकदम सीधा तथा स्थिर कीजिये। अपनी छाया की गर्दन पर त्राटक कीजिये और मन को भी उस बिन्दु पर एकाग्र कीजिये। फिर शरीर को स्थिर रखते हुए दृष्टि को आकाश की ओर उठाइये। आपको आकाश में शरीर की विशाल प्रतिछवि दिखेगी। आकाश में जब तक यह प्रतिछवि गायब नहीं होती, उस पर दृष्टि स्थिर रखिये। पुनः जमीन पर अपनी छाया की गर्दन पर त्राटक कीजिये। इस प्रक्रिया को कुछ समय तक दुहराइये।

यदि आप किसी मण्डल पर त्राटक करते हैं तो उसे अच्छे प्रकाश में रखिये, ताकि यदि उस पर प्रकाश केन्द्रित किया जाय और उसके आसपास का हिस्सा काला हो, तो उसकी जो प्रतिछवि बनेगी वह बड़ी अद्भुत होगी। यदि इस प्रकार आप दीर्घकाल तक त्राटक का नियमित अभ्यास करेंगे तो जो प्रतिछवि बनेगी वह त्राटक की मूल वस्तु जैसी सजीव और वास्तविक होगी।

यदि आपने त्राटक में निपुणता प्राप्त कर ली है और सफेद पृष्ठभूमि में वस्तु की प्रतिछवि को खुले नेत्रों से देख सकते हैं, तो उसे बन्द आँखों से देखने का प्रयत्न कीजिये। ऊपर बताई विधि से त्राटक कीजिये, फिर दृष्टि को ऊपर अथवा नीचे हटाने की अपेक्षा नेत्रों को बन्द कर लीजिये और प्रतिबिम्ब को भ्रूमध्य में देखने की कोशिश कीजिये। जब इस प्रकार बन्द आँखों से आप प्रतिछवि देख सकेंगे तो इसे धारणा कहेंगे। फिर यह धारणा आपको ध्यान में ले जायेगी। मण्डल के अन्तर्दर्शन की तकनीक यंत्र पर भी लागू की जा सकती है।

त्राटक के अन्य उच्च अभ्यास भी होते हैं। जब आप बन्द आँखों से त्राटक की वस्तु की प्रतिछवि देखने लगें तब इस प्रतिछवि को किसी चक्र पर आरोपित करके देखिये। इसके लिए किसी एक मण्डल का चुनाव कर अपने अभ्यास में निपुणता लाइये और फिर प्रतिछवि को एक से दूसरे चक्र पर सरकाते जाइये। इसे आप दूसरे ढंग से भी कर सकते हैं। मूलाधार चक्र के मण्डल पर त्राटक कीजिये और उसकी प्रतिछवि को मूलाधार पर आरोपित कीजिये। जब इसमें सफलता मिल जाये तो स्वाधिष्ठान, मणिपूर आदि के

मण्डलों पर त्राटक का अभ्यास कीजिये। इस प्रकार अपने अभ्यास को आगे बढ़ाइए।

त्राटक की यह साधना यद्यपि समय-साध्य है, तथापि बड़ी दिलचस्प है। यह आपको करीब पाँच वर्षों तक व्यस्त रखेगी, क्योंकि मैंने जो बात आपसे पाँच मिनट में कही है, उसमें पूर्णता प्राप्त करने के लिए पाँच वर्ष भी लगें, तो अधिक नहीं कहा जा सकता। योग में यही मुश्किल आती है कि जिस बात को कहने में मात्र एक मिनट लगता है, उसका अनुभव करने में वर्षों लग जाते हैं।

मान लीजिये आप मूलाधार चक्र के मण्डल पर ध्यान करना चाहते हैं। तब सर्वप्रथम सफेद पृष्ठभूमि में खुली आँखों से उसके मंडल पर त्राटक करना होगा। प्रयास कीजिये कि खुले नेत्रों से आकाश या जमीन पर दिखने वाली मण्डल की प्रतिछवि अधिकाधिक स्पष्ट हो। इसके बाद बन्द नेत्रों से प्रतिछवि को भ्रूमध्य में देखिये। फिर इस प्रतिछवि को मूलाधार चक्र पर आरोपित कर बन्द नेत्रों से देखिये। क्या आप कल्पना कर सकते हैं कि इसमें सफलता प्राप्त करने हेतु कितने वर्षों तक आपको धैर्यपूर्वक अभ्यास करना होगा। इसमें भले ही कितना भी समय लगे, आपको जो अनुभव होंगे वे निश्चय ही बड़े लाभप्रद होंगे।

– सितम्बर 1980, ज़िनाल, स्विट्ज़रलैंड

कर्म का सिद्धान्त

कर्म जीवन में मनुष्य द्वारा किये गये कार्यों की शृंखला है अथवा यह भी कह सकते हैं कि कर्म जीवन में किये समस्त कार्यों के प्रभाव हैं। कर्म तीन प्रकार के होते हैं – पहली श्रेणी में वे कर्म आते हैं जिन्हें हम वर्तमान में कर रहे हैं, दूसरे वे हैं जिन्हें हम कर चुके हैं और तीसरे प्रकार के कर्मों की अभिव्यक्ति हमारे प्रारब्ध के रूप में होती है। पहली श्रेणी के कर्मों को हम आत्मबल द्वारा बदल सकते हैं। यदि हम आध्यात्मिक जीवन बितायें तो विगत काल में किये गये कर्मों को भी बदल सकते हैं, परन्तु जो कर्म हमारे प्रारब्ध बन चुके हैं, उनमें किसी भी प्रकार का फेर-बदल संभव नहीं है। उन्हें भोग कर ही समाप्त किया जा सकता है। इसे एक उदाहरण द्वारा समझाया जा सकता है। मान लो आपकी जेब में एक भरी हुई पिस्तौल है। यह एक स्थिति हुई। आपके हाथ में पिस्तौल तैयार है। आप चाहें तो उसे दाग सकते हैं अथवा वापस जेब में रख सकते हैं। यह दूसरी स्थिति हुई। तीसरी स्थिति में मान लो आपने पिस्तौल का घोड़ा दबा दिया और गोली चल पड़ी। अब आप कुछ नहीं कर सकते।

उसी प्रकार प्रारब्ध का सामना करना और उसे भोगना किसी भी प्रकार टाल नहीं सकते। प्रारब्ध को बदल नहीं सकते, उसे भोगना ही होगा। यदि आप अज्ञान और माया से जकड़े हुए हैं तो रो-धोकर, अत्यन्त पीड़ाकुल हो अपने प्रारब्ध को भोगेंगे, परन्तु यदि आप ज्ञानी हैं तो प्रसन्नतापूर्वक हँसते-खेलते उसे भोगेंगे। इसके लिए न तो आप शोकाकुल होंगे और न ही घुल-घुल कर अपनी सेहत नष्ट करेंगे। जब सुकरात को जेल भेजा गया तो उसने थोड़ा भी दुःख नहीं किया, अपने प्रारब्ध को खुशी-खुशी स्वीकारा। तात्पर्य यह है कि जीवन की परिस्थितियों को आप ज्ञानी के समान अथवा अज्ञानी की तरह स्वीकार कर सकते हैं। यह तो आत्मा के गुण पर निर्भर करता है जो प्रारब्ध को भोगने के लिये उत्तरदायी है।

अब हम कर्म के एक अन्य पक्ष पर आते हैं। कुछ कर्म हम कर चुके होते हैं, परन्तु वे परिपक्व नहीं हुए रहते। वे बीज की तरह विद्यमान रहते हैं। यदि हम अनुशासित आध्यात्मिक जीवन बिताते हैं, तो निश्चय ही उनकी तीव्रता में न्यूनता आती है। यही कारण है कि अनेक लोग सत्संग और तीर्थ यात्राएँ करते हैं, मंत्र दीक्षा लेते हैं और आध्यात्मिक जीवन बिताते हैं। ये सब बातें

अपरिपक्व कर्मों की तीव्रता को कम करती हैं। इसके लिये कर्मयोग उपयोगी सिद्ध हुआ है।

कर्मयोग का तात्पर्य बिना किसी प्रकार के स्वार्थ अथवा फलाकांक्षा के कर्म करने से है। यदि आप समर्पण एवं निरपेक्ष भावना से कर्म कर सकें, तो ऐसा कार्य कर्मयोग कहलाता है। कर्मयोग संचित कर्मों की धूल को झाड़ता है। यही कारण है कि प्राचीन काल में गृहस्थ लोग आश्रमों में जाते थे तथा वहाँ सभी प्रकार का काम करते थे। इसके लिये उन्हें किसी भी प्रकार का पारिश्रमिक, प्रमाण-पत्र अथवा उपाधियाँ नहीं मिलती थीं।

आश्रमों में राजाओं से लेकर आम आदमी तक सभी श्रेणियों के लोग मिल-जुलकर रहते थे। वहाँ का जीवन घर के जीवन से एकदम भिन्न होता था। वहाँ की कार्यशैली कुछ इस ढंग की होती थी कि उससे साधकों के कर्म-क्षय होने में बड़ी मदद मिलती थी। जिस प्रकार कभी-कभी हम लोग बहुत कुछ उल्टा-सीधा खाद्य-अखाद्य खा लेते हैं तो कुछ समय बाद हमें अतिसार हो जाता है जिससे पेट की सफाई होती है, ठीक उसी तरह कर्मयोग द्वारा मन और कर्मों की सफाई की प्रक्रिया चलती है। हो सकता है कि इस सफाई के दौरान हमें अत्यधिक पीड़ा और असुविधा महसूस हो, परन्तु यह तो शुद्धिकरण है। जब आपका मन विचारों, भावनाओं, आवेगों तथा उत्तेजनाओं से उद्वेलित होने लगे तो यह समझिये कि मनोवैज्ञानिक स्तर पर सफाई की क्रिया तेजी से चल रही है। यदि ऐसे समय आप आश्रम में आकर रहें और उसके कार्य-कलापों में सक्रिय रूप से शामिल हों तो इससे बड़ा लाभ होगा। आजकल सभी लोगों के लिये आश्रमों में जाकर रहना सम्भव नहीं होगा, क्योंकि एक तो जीवन इतना व्यस्त और जटिल है कि आश्रम के लिए समय निकालना मुश्किल होता है और दूसरा यह कि सभी जगह आश्रम उपलब्ध नहीं होते।

यदि लोग आश्रम जाने का विचार करते भी हैं तो जाने से पहले इस बात से आश्वस्त होना चाहते हैं कि वहाँ आधुनिक जीवन की सुख-सुविधाएँ हैं या नहीं। वे समझते हैं कि आश्रम सब प्रकार की सुख-सुविधाओं से सम्पन्न होटल की तरह होता है, जहाँ क्रियायोग सीखा जा सकता है। यह जरूरी नहीं कि वह पूर्ण परम्परागत ढंग का ही हो, परन्तु वहाँ की जीवनशैली और कार्यपद्धति द्वारा आपका आन्तरिक शुद्धिकरण अवश्य हो सकता है।

अब मैं अपनी बात एक भिन्न तरीके से आपको समझाने की कोशिश करूँगा। प्रत्येक कार्य एक संवेग है, जिसकी समाप्ति पर एक बीज गिरता है। प्रारंभ में यह बीज स्मृति रूप में रहता है तथा समय पाकर संस्कार में रूपान्तरित हो जाता है। जब यह स्मृति संस्कार में बदलती है, तो इसके प्रतीकात्मक रूप को हम पहचान नहीं सकते हैं। ये प्रतीक हमारे स्वप्न और ध्यान में तथा चिन्तन में जाने-अनजाने उभरते हैं। इसे एक उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है।

एक व्यक्ति की पत्नी की मृत्यु हो जाती है, उसकी मृत्यु का अनुभव संस्कार का रूप ले लेता है। जब भी कोई घटना प्रतीकात्मक रूप ले लेती है तो उसका स्वरूप चित्रमय नहीं, तरंगमय होता है। पत्नी की मृत्यु के तीन वर्ष पश्चात् वह व्यक्ति स्वप्न में, झील में एक कमल का फूल देखता है। एक पक्षी झपट्टा मारकर उसे तोड़ देता है और वह कमल झील में गिरकर गायब हो जाता है। इसे पत्नी की मृत्यु की स्मृति का संस्कार में रूपान्तरण कहेंगे।

हमारा प्रत्येक अनुभव एक स्मृति होता है जो आगे चलकर संस्कार बनता है। संस्कार बड़े सशक्त होते हैं। यदि आप एक बीज को बीच से काटें तो उसके अन्दर आपको कमल, अखरोट अथवा सेब के दर्शन नहीं हो सकते। बीज की यह क्षमता उसमें सुप्त रहती है और यदि आप माली नहीं हैं तो यह निश्चयपूर्वक नहीं कह सकते कि वह बीज कैसा है। इसी तरह आपकी चेतना भी असंख्य बीजों से भरी पड़ी है।

मानव चेतना उस महासागर के सदृश है, जिसमें अनगिनत कर्मों की अरबों-खरबों बूँदें पड़ी हैं, जिनका कोई अन्त नहीं है। ऐसी स्थिति में क्या किया जाय? इसका सर्वोत्तम उपाय यह है कि कर्मों को होने दें, तथा साथ ही सकारात्मक कर्मों को करने का प्रयास करें। जब आप योगमय आध्यात्मिक जीवनशैली अपनाते हैं तो एक नई श्रेणी के कर्म करते हैं। ये कर्म सकारात्मक होते हैं जो नकारात्मक कर्मों पर हावी होकर उनकी तीव्रता को कम करते हैं।

– 2 सितम्बर 1980, शामराँद, फ्रांस

कुण्डलिनी का जागरण क्यों?

दीर्घकाल से हम यह मानते आये हैं कि हमारा अस्तित्व शरीर, मन तथा इन्द्रियों तक ही सीमित है और इन सीमाओं का अतिक्रमण संभव नहीं है। यही मनुष्य की महान् कमजोरी रही है। यह सही है कि हमारा शरीर तथा मन है, परन्तु यह बड़े दुर्भाग्य की बात है कि न चाहते हुए भी हम इनकी सीमाओं से बँधे हुए हैं। कदाचित् हम अपने भीतर देख सकते तो हमें मालूम होता कि इस सीमित शरीर और मन के पीछे एक महान् गतिशील ऊर्जा का अनन्त भंडार छिपा है। शरीर और मन अन्तिम सत्य नहीं हैं। मनुष्य न तो कमजोर है और न ही नपुंसक। शोक, रोग, कमजोरी उसकी बाध्यतायें हैं तथा भावनात्मक विखण्डन उसकी परिस्थिति के कारण होता है। कोई ऐसी युक्ति अवश्य है जिसके द्वारा वह स्वयं को जीवन की इन त्रासदियों के प्रभाव से बाहर रख सकता है।

यद्यपि अभी तक मनुष्य इस युक्ति को प्राप्त नहीं कर पाया है, तथापि उसमें बुद्धि और क्षमता प्राकृतिक रूप से निहित है। जब वैज्ञानिकों ने पदार्थ में आण्विक ऊर्जा की खोज की तो पूरा संसार आश्चर्यचकित रह गया, क्योंकि एक सामान्य व्यक्ति के लिए पदार्थ केवल पदार्थ है, उससे अधिक कुछ नहीं। उदाहरण के लिये, यदि आप वैज्ञानिक नहीं हैं तो रेत आपके लिये मात्र रेत ही रहेगी। परन्तु वैज्ञानिक अपनी खोजों के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि रेत में अपार आण्विक ऊर्जा की संभावनाएँ छिपी पड़ी हैं। इसी आधार पर आप यह विश्वास क्यों नहीं कर पाते कि मानव शरीर में भी अपार ज्ञान और बुद्धि पड़ी है। क्या हम मात्र पापी ही हैं? क्या हम लोभ और वासनाओं के दास हैं? क्या केवल यही सब हमारे व्यक्तित्व का सार तत्त्व है? क्या यह संभव नहीं कि हम आज जो हैं, उससे कहीं अधिक शक्तिमान हो जायें?

यदि बात ऐसी ही है तो फिर हम हैं क्या? चूँकि हमारे पास यह जानने का साधन नहीं है कि हम जो कुछ हैं उससे भी कहीं अधिक क्षमता के धनी हैं, और चूँकि हम जीवन को सीमाबद्ध पाते हैं, इसलिए हम इस अवास्तविक निर्णय पर पहुँचते हैं कि बस, हमारे व्यक्तित्व और अस्तित्व की इतिश्री यहीं हो जाती है। एक सुहानी सुबह आप माता के गर्भ से बाहर आते हैं। वह आपका प्रथम जन्मदिन होता है। पुनः एक दिन आप अन्तिम श्वास लेते हैं तो वह आपका अन्तिम दिन कहलाता है। आपकी आँखों में यह क्षमता है ही

नहीं कि आप अपने जीवन के प्रथम दिन के पूर्व तथा अन्तिम दिन के बाद अपने अस्तित्व की दशाओं का अन्तर्दर्शन कर सकें।

हमें इस बिन्दु को स्पष्ट रूप से समझना होगा। या तो हम अनन्त हैं अथवा सीमित, संकुचित मानव मात्र हैं। यदि आप समझते हैं कि आप जो कुछ हैं वही आपकी अन्तिम सीमा है, तब तो फिर आपको योग, धर्म और आध्यात्मिक जीवन के पचड़े में पड़ने की आवश्यकता नहीं है। आपका जीवन-दर्शन मात्र 'खाओ, पीओ, मौज करो' होना चाहिए। परन्तु इसके विपरीत यदि आप मानते हैं कि आप अनन्त हैं, आपका जीवन उतना ही नहीं है जितना दिखलाई पड़ता है, दृश्य यथार्थ के परे भी यथार्थ होता है, तो फिर आपको उस यथार्थ का पता लगाना होगा। क्या आप उसे हस्तगत कर सकते हैं? क्या वह अभिव्यक्त हो सकता है? क्या हम अपने व्यक्तित्व में गुणात्मक रूपान्तरण ला सकते हैं? इन सब प्रश्नों का उत्तर है, 'हाँ, यह सब संभव है' और यही योग और तंत्र का लक्ष्य भी है।

योग और तंत्र बार-बार इस तथ्य की घोषणा करते हैं कि मनुष्य में कुण्डलिनी के रूप में महान् ज्ञान और क्षमता सुप्तावस्था में सन्निहित है। कुण्डलिनी को प्रत्येक मनुष्य में निहित सुप्त चेतना कहते हैं। प्रत्येक मनुष्य के समक्ष यह संभावना विद्यमान है कि वह स्वयं में सम्भावनाओं से पूर्ण इस दिव्य शक्ति को जगा सकता है। आम आदमी अपने इन्द्रियगत अनुभवों द्वारा नियंत्रित होता है, परन्तु कुण्डलिनी के जागरण के पश्चात् उसकी चेतना में

महान् परिवर्तन आता है। जब मन के तत्त्वों का रूपान्तरण होता है तो उसके ज्ञान में भी गुणात्मक परिवर्तन आता है।

ऐसी अनेक महान् हस्तियाँ दिखती हैं जिनमें जन्म से ही कुण्डलिनी जाग्रत रहती है। इन्हें सन्त, धर्म-प्रवर्तक, पैगम्बर, चोटी के कलाकार, संगीतज्ञ, कवि, लेखक, वैज्ञानिक तथा दूर दृष्टि प्राप्त मसीहा या पैगम्बर कहा जाता है। उनकी बुद्धि, व्यवहार तथा चेतना आदि का स्तर बड़ा असाधारण होता है। हमें ऐसे अनेक बच्चे देखने को मिलते हैं जिनकी शारीरिक वृद्धि, मानसिक विकास तथा बुद्धि सब-के-सब कुण्ठित होते हैं। उनमें से अनेक को मानसिक चिकित्सालय भेज दिया जाता है, परन्तु दूसरी ओर हम ऐसे लोगों को भी देखते हैं जिनमें तत्काल कोई मानसिक परिवर्तन आता है तथा वे असाधारण प्रतिभा-सम्पन्न हो जाते हैं।

अब हम एक महत्त्वपूर्ण बिन्दु पर आते हैं। कुछ लोगों में कल्पनातीत मानसिक संतुलन तथा शान्ति होती है, तो कुछ अत्यधिक चंचल तथा असंतुलित होते हैं। चंचलता मन का स्वभाव है, तो शान्ति तथा संतुलन उसकी रूपान्तरित अवस्था को कहते हैं। यदि ध्यानपूर्वक देखें तो आप पायेंगे कि

जिनका मन शान्त होता है, वे जीवन में आने वाली किसी भी परिस्थिति से विचलित नहीं होते। आप उन्हें डंडा मारिये, गालियाँ दीजिये अथवा परेशान कीजिये, वे कभी अपना मानसिक संतुलन नहीं खोते। आपकी ठोकरें खाने पर भी वे आनन्द की दूसरी दुनिया में रहते हैं। इसका कारण यह नहीं कि कदाचित् वे कुन्द, कुण्ठित अथवा अज्ञानी होते हैं, बल्कि उन्होंने अपने मन को एकदम शान्त तथा एकाग्र कर लिया है।

दूसरी ओर दृष्टि डालें तो आपको ऐसे लोग मिलेंगे जिनके पास सुन्दर बीवी, बच्चे, मकान, मोटर, धन, सत्ता, पद आदि सभी कुछ होते हुए भी उन्हें एक क्षण के लिए शान्ति सुलभ नहीं होती। आप चाहे उन्हें प्यार दें अथवा ठोकर, दोनों ही अवस्थाओं में वे बेचैन रहते हैं। भले ही उनके पास अपार धन राशि हो अथवा उनका धन घट रहा हो, वे स्वयं को असुरक्षित ही समझेंगे। उनकी इन निषेधात्मक भावनाओं के लिए जीवन की परिस्थितियाँ नहीं बल्कि उनके मन का निम्न गुणात्मक स्तर उत्तरदायी होता है। एक बार यदि मन का कायाकल्प हो जाये तो जीवन की विपरीत परिस्थितियाँ भी उन्हें प्रभावित नहीं कर पातीं। इसके विपरीत यदि उनके मन का घटियापन बरकरार रहे तो जीवन में वरदान स्वरूप समझी जाने वाली अनुकूल परिस्थितियाँ भी उन्हें खुश नहीं कर पायेंगी।

कुण्डलिनी के जागते ही आपकी सोयी हुई अपार बौद्धिक क्षमता सक्रिय हो उठती है। आप सृजनात्मक प्रतिभा के धनी हो जाते हैं। आपको न केवल ईश्वर की दिव्य झलक मिलती है, बल्कि आप एक आदर्श माता-पिता, पति-पत्नी अथवा पुत्र-पुत्री बन सकते हैं, जीवन के हर क्षेत्र में कुशल बन सकते हैं। आप अन्तरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त राजनेता, प्रधानमंत्री, राज्यपाल अथवा राष्ट्राध्यक्ष बन सकते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि कुण्डलिनी जागरण से मानव मन तथा व्यवहार का प्रत्येक क्षेत्र प्रभावित होता है।

कुण्डलिनी कोई कपोल-कल्पना या भ्रान्ति नहीं है। वह न तो कोई परिकल्पना है और न ही सम्मोहक सुझाव। कुण्डलिनी शरीरगत ठोस वास्तविकता है जो प्रत्येक मानव-शरीर में विद्यमान है। उसके जागने से समूचे शरीर में विद्युतीय स्फुरण होता है जिसे आधुनिक वैज्ञानिकों द्वारा देखा-परखा जा सकता है। प्रत्येक व्यक्ति को कुण्डलिनी जागरण के लाभ को जानना तथा उसकी आवश्यकता को न केवल महसूस करना चाहिए, बल्कि दृढ़तापूर्वक इस महान् शक्ति के जागरण का संकल्प लेना चाहिए।

– 3 सितम्बर 1980, शामराँद, फ्रांस

व्यक्तित्व का रूपान्तरण

स्वयं के बारे में बुरा सोचना मन का सामान्य व्यवहार है। परन्तु दूसरों के विषय में बुरा सोचना या बोलना मन के इस व्यवहार की अभिव्यक्ति है। यदि आपके शरीर से दुर्गन्ध निकलती है तो वह आपकी अपनी दुर्गन्ध है, परन्तु वह बाहर निकलकर दूसरों तक भी पहुँचती है। इसी प्रकार जब आप निषेधात्मक ढंग से सोचते हैं और आपके ये विचार जब अभिव्यक्त होते हैं, तो आलोचना कहलाते हैं। ये दोनों बातें परस्पर सम्बन्धित होती हैं।

महर्षि पतंजलि के योगसूत्रों में एक सूत्र यह आता है कि 'मन की शान्ति बड़ी महत्त्वपूर्ण वस्तु है।' जब आप दूसरों के विषय में बुरा सोचते हैं तो आपका मन शान्त नहीं रहता। जब आपको मानसिक शान्ति ही सुलभ न हो तो आप ध्यान में कैसे सफल होंगे? भले ही आपका मन एकाग्र हो, परन्तु गहराई में तो झंझावात छिपा पड़ा है। यह झंझावात किसी भी क्षण प्रकाश को बुझा सकता है।

मानसिक शान्ति प्राप्त करने के लिए यह बहुत आवश्यक है कि आप दूसरों के प्रति, जो सुखी और सम्पन्न हैं, मैत्री-भाव रखें। जो दुःखी हैं, उनके प्रति करुणा का भाव रखें। जो सद्गुणी हैं, उनके बीच पहुँचने पर प्रसन्न होइये और दुष्टजनों की उपेक्षा कीजिये। *मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां भावनातः चित्तप्रसादनम्* – ये चार मनोवृत्तियाँ बड़ी महत्त्वपूर्ण हैं। इन्हें अपने में विकसित कीजिये। उपर्युक्त चार प्रकार के लोगों के साथ व्यवहार के समय इन्हें स्मरण रखिये। यहाँ मैं इन पर विस्तारपूर्वक प्रकाश डालूँगा।

अक्सर जब हम सुखी तथा सम्पन्न लोगों को देखते हैं तो उनके प्रति ईर्ष्यालु हो जाते हैं। यह एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। परन्तु योग के मतानुसार आपको उन्हें अपना मित्र बनाना चाहिए। यदि आप सम्पन्न, विद्वान्, अच्छे बच्चों तथा पत्नी वाले भाग्यवान् व्यक्ति हैं, तो इससे मुझे ईर्ष्या करने की कोई जरूरत नहीं है। यदि मैं ईर्ष्या करता हूँ तो मेरी मानसिक शान्ति अवश्य नष्ट हो जायेगी। यदि मैं आपको अपना मित्र बना लेता हूँ तो आपका सुख मेरा सुख हो जायेगा। यह पहली बात ध्यान में रखिये।

संसार में असंख्य लोग दुःखी हैं। अब यदि हम किसी व्यक्ति को पसन्द नहीं करते और यदि वह मुसीबत में पड़ जाता है, तो हम मन-ही-मन बड़े प्रसन्न

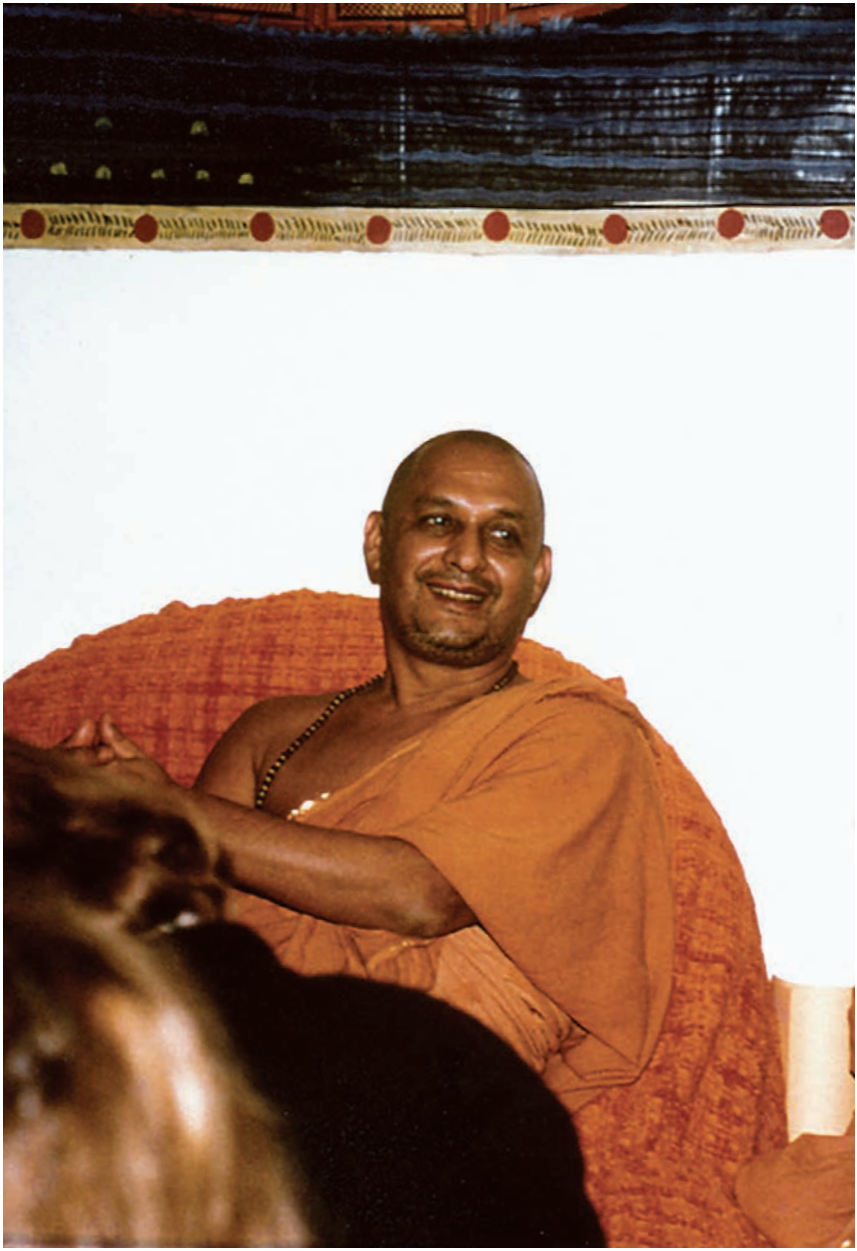

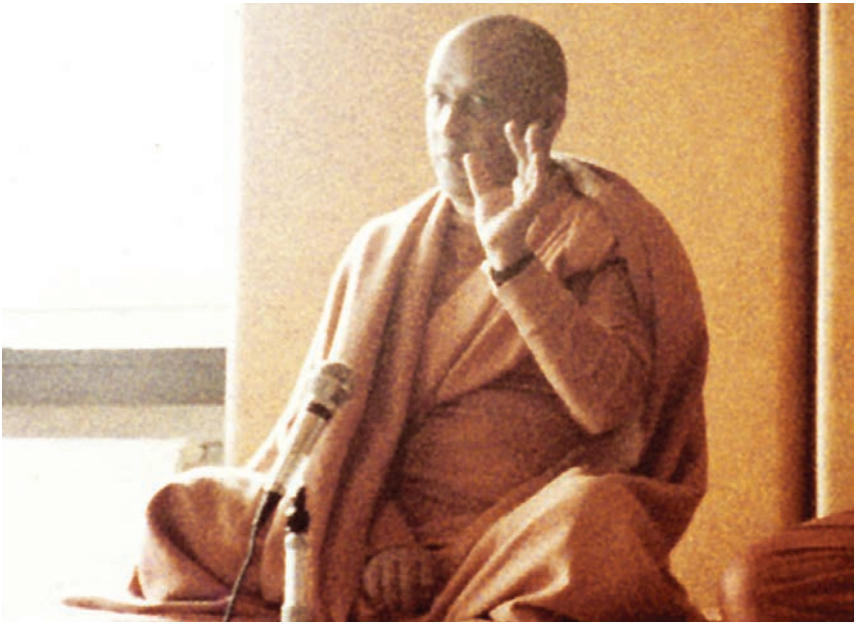

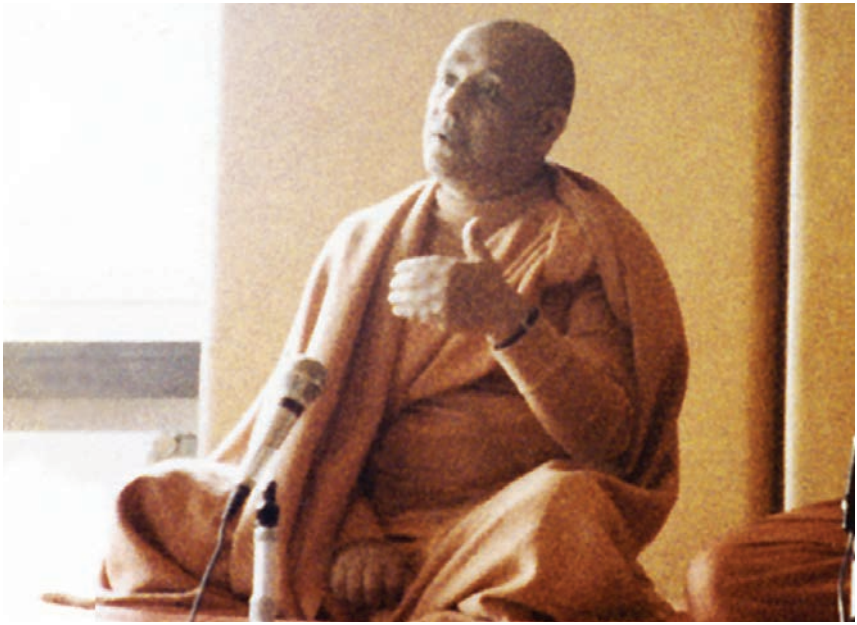

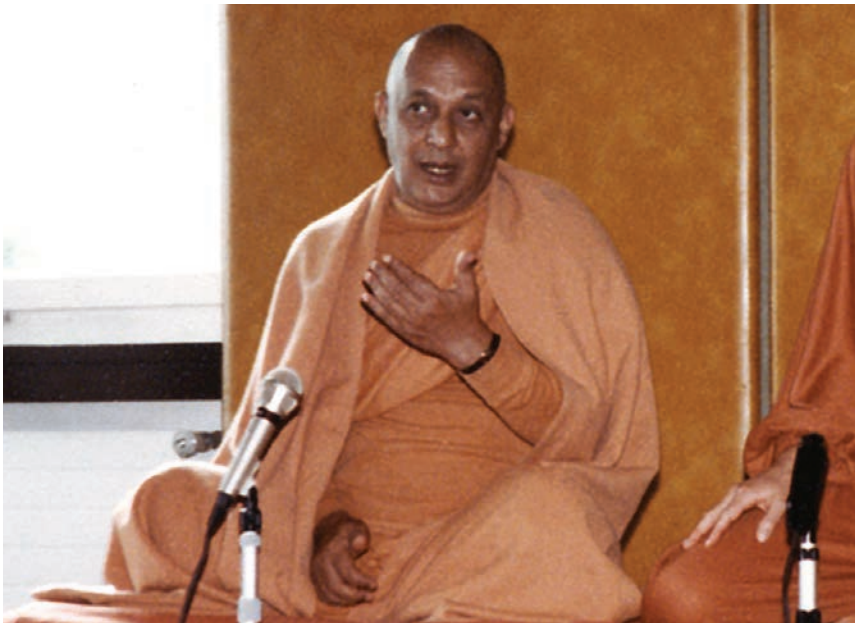

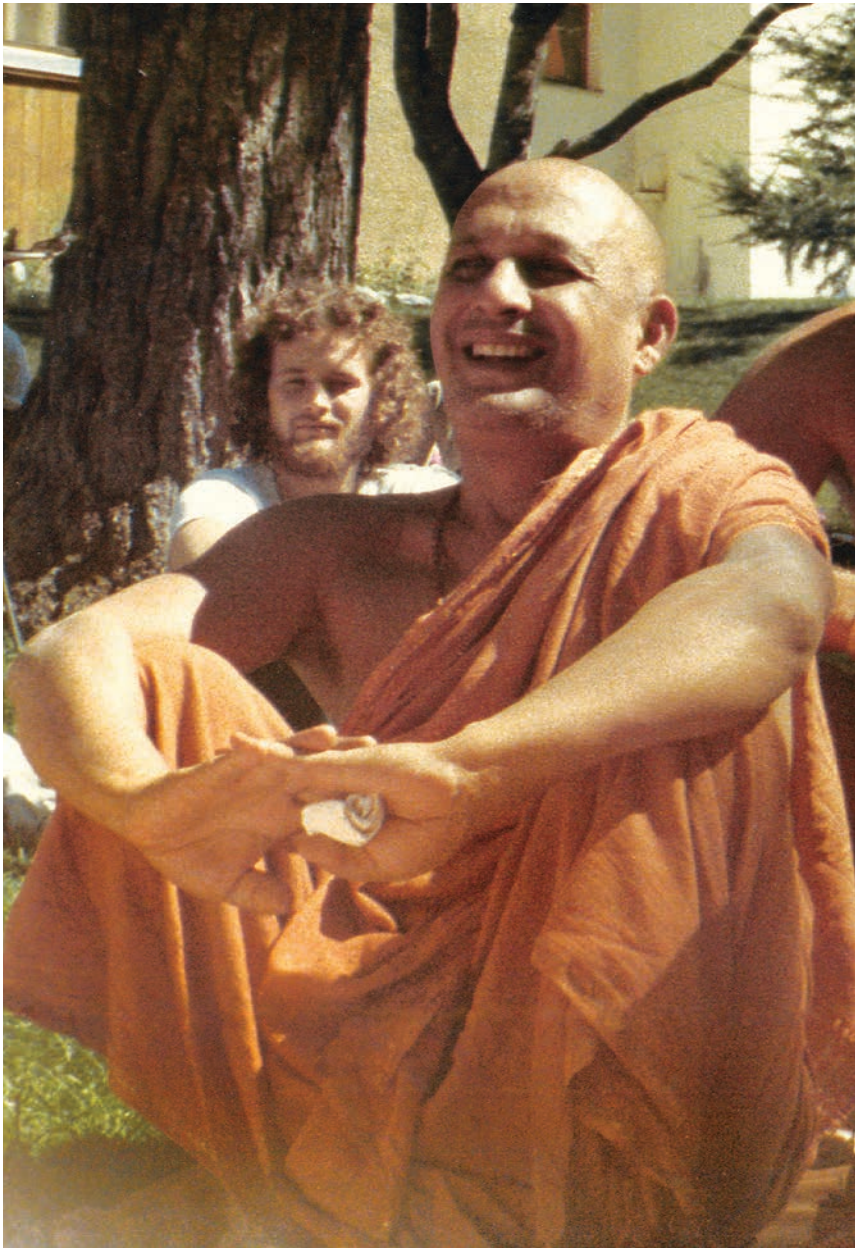

होते हैं। हम कहते हैं, 'यह बहुत अच्छा हुआ, वह इसी के लायक है।' यदि आप ऐसा सोचते हैं तो आप अपने मन को पुनः व्यथित करते हैं। इससे आपका ध्यान भी बाधित होगा। ऐसे मामलों में आपकी प्रसन्नता नहीं, बल्कि करुणा का भाव वांछनीय होगा। यह ठीक है कि आपकी राय में वह एक बुरा व्यक्ति है, परन्तु इस समय तो वह मुसीबत में है। इसलिए दूसरों को दुःखी देखकर अपने मन में करुणा का भाव लाना चाहिये। यह दूसरी महत्त्वपूर्ण बात है।

अनेक लोग बड़े सद्गुणी तथा सदाचारी होते हैं। वे दूसरों की सहायता का अवसर कभी नहीं चूकते। वे परोपकारी होते हैं तथा अपना बहुत-सा धन परहित के लिए दान में दे देते हैं। यह देखकर हमारी प्रतिक्रिया क्या होती है? 'यह सब ढोंग है, दिखावा है, लोगों की वाहवाही लूटने की तिकड़म है।' कभी-कभी हम यह भी कह उठते हैं – 'यह सब पाप की कमाई है, जो दिखावे के लिए दान में लुटाई जा रही है।' ऐसी ओछी बातें कर आप अपने मन के आधार को ही विचलित करते हैं। इससे आपका ध्यान भी अस्त-व्यस्त हुए बिना नहीं रहेगा। इस विषय में सही दृष्टिकोण यह होगा कि आप उसके इस कार्य से सुखी होइये, उसकी प्रशंसा कीजिये। वह दूसरों की भलाई कर रहा है, वह उदार है, वह अपने धन का सही उपयोग कर रहा है। यदि आपकी विचारधारा इस प्रकार की होगी तो आप न केवल सुखी होंगे, आपके ध्यान में प्रगति तथा स्थिरता भी आयेगी। यह तीसरी बात गाँठ बाँध लीजिये।

अब चौथी बात पर आइये। आप किसी दुराचारी, चरित्रहीन व्यक्ति को देखते हैं तो उसे बुरा कहते हैं। उससे घृणा करते हैं। चोर-अपराधियों के प्रति भी आपके मन में ऐसे ही विचार आते हैं। आप कहते हैं, 'वह बड़ा बुरा आदमी है, उसके पास मत जाओ।' जब कुछ लोग एकत्र होते हैं तो एक आदमी दूसरे के विषय में सबके सामने भला-बुरा कहता रहता है। ऐसा व्यक्ति कभी भी सुखी नहीं रह सकता। वह असामान्य होकर मानसिक विघटन के कगार पर पहुँच जाता है। हो सकता है वह आदमी बुरा हो, परन्तु आप दिन-रात यदि उसकी बुराई का ही राग अलापते रहेंगे तो इससे उसकी बुराई समाप्त होने के बजाय दृढ़मूल होगी। इससे आपका भी कोई भला नहीं होगा। वह बुरा है, तो अपने लिये। इससे आपको क्या लेना-देना? आप क्यों अपनी मानसिक शान्ति खोते हैं? उससे दूर रहिये, उदासीन रहिये। यही सही दृष्टिकोण तथा व्यवहार है।

मानसिक शान्ति के लिये आपकी मनोवृत्ति एकदम स्वस्थ होनी चाहिए। मैं आपको एक ऐसे व्यक्ति के विषय में बताता हूँ जिसने जीवनपर्यन्त इस सही

दृष्टिकोण को व्यवहार में उतारा था। मैं अनेक वर्षों तक इस महान् व्यक्ति के पवित्र सान्निध्य में रहा। वे मेरे गुरु, स्वामी शिवानन्द जी थे। जो भी उनकी आलोचना करता, वे उसकी सेवा करते थे। जो उन्हें नुकसान पहुँचाता, अपशब्द कहता, वे उसकी मातृवत् सेवा-शुश्रूषा करते थे। वे ऐसे लोगों की देखभाल अपने शिष्यों की देखभाल से भी बेहतर ढंग से करते थे।

हममें से कुछ अच्छे शिष्य थे जो उनके प्रति बड़े समर्पित थे, परन्तु वे हमारी ओर उतना ध्यान नहीं देते थे जितना उन शिष्यों की ओर, जो अपेक्षाकृत पिछड़े अथवा स्थापित मानदण्ड से नीचे होते थे। वे बहुधा ऐसे शिष्यों के कमरों में फल आदि भेजते थे। जब भी कपड़ों का वितरण होता, वही लोग सर्वप्रथम पाते थे। जब भी आश्रम में कोई उत्सव अथवा सत्संग होता, उन्हें प्रथम पंक्ति में बिठाया जाता था। स्वामीजी हमेशा उन शिष्यों के साथ ऐसा ही व्यवहार करते थे।

ऐसे भी लोग होते हैं जिनके साथ कितना भी अच्छे-से-अच्छा व्यवहार करें, वे जरा भी नहीं बदलते। एक बार हमने गुरुदेव का ध्यान ऐसे ही एक शिष्य की ओर आकर्षित किया। स्वामीजी उसके साथ बड़ा शालीन व्यवहार करते थे, परन्तु फिर भी वह अपनी दुष्टता से बाज नहीं आता था। हमने स्वामीजी से कहा, 'बुरे शिष्यों के प्रति आपका व्यवहार निश्चय ही बहुत अच्छा है। परन्तु यदि वे अपने आप को नहीं बदलते, तो आप उन्हें सबक क्यों नहीं सिखाते?' उन्होंने इसका नकारात्मक उत्तर देते हुए एक दृष्टांत कथा सुनायी।

एक बार एक दयालु सज्जन गंगा में स्नान कर रहा था। उसने देखा कि एक बिच्छू धारा में बहा जा रहा है। उसे बचाने के लिये उस व्यक्ति ने उसे हाथ से पकड़कर हथेली पर रख लिया, परन्तु बिच्छू ने उसे डंक मार दिया। फिर भी वह उसे पकड़े ही रहा। बिच्छू ने पुनः डंक मारा। पास खड़ा एक व्यक्ति यह सब कुछ देख रहा था। उसने सज्जन से पूछा, 'आप उस बिच्छू को मरने के लिए धारा में क्यों नहीं छोड़ देते?' सज्जन ने उत्तर दिया, 'जब बिच्छू अपना स्वभाव नहीं छोड़ता, तो मैं क्यों अपना स्वभाव छोड़ दूँ?'

इसलिए यदि आप अपने नकारात्मक विचारों को समाप्त करना चाहते हैं तो अपने समूचे स्वभाव को बदलिये। सत्संग द्वारा आप ऐसा कर सकते हैं। यह भी बड़ा आवश्यक है। सत्संग का तात्पर्य ऐसे लोगों की संगति से है जो रचनात्मक विचार रखते हैं। आप समूह में नाम संकीर्तन अथवा योगाभ्यास, सद्ग्रन्थों का स्वाध्याय तथा दैनिक जीवन की समस्याओं पर विचार का आदान-प्रदान कर सकते हैं। यह सब सत्संग के अन्तर्गत आता है। इससे आपका चिन्तन भी निश्चय ही रचनात्मक होगा।

मानव-स्वभाव के शुद्धिकरण के लिए सत्संग बड़ी महत्त्वपूर्ण साधना है। यदि हम सत्संग नहीं कर सकते तो प्रेरणादायी सद्ग्रन्थों का स्वाध्याय कर सकते हैं। जब मैं विद्यार्थी था तब थॉमस-ए केंपिस का प्रेरणादायक ग्रन्थ 'इमिटेशन ऑफ क्राइस्ट' पढ़ता था। जितनी बार भी मैं उसे पढ़ता, मुझे नयी प्रेरणा मिलती थी। इसी प्रकार स्वामी शिवानन्द जी ने भी अनेक सद्ग्रन्थों की रचना की है। यदि आप उनका स्वाध्याय करें तो निश्चय ही आपके स्वभाव और विचारों में महान् परिवर्तन आ सकता है।

हम भी योग पर व्यावहारिक ग्रन्थ लिखते हैं। स्वामी शिवानन्द जी मानव स्वभाव पर पुस्तकें लिखते थे। उनका एक ऐसा ही आश्चर्यजनक ग्रन्थ है 'माइंड – इट्स मिस्ट्रीज़ एण्ड कन्ट्रोल'। यदि आप इसे पढ़ें तो आप स्वयं को ऐसे देख पायेंगे मानो दर्पण में देख रहे हों। जब तक आप स्वयं को नहीं देख पाते तब तक अपने में सुधार कैसे ला सकेंगे? अपने को रूपान्तरित करने के लिए स्वयं को एकदम अनावृत देखना आवश्यक है। आपके सामने अपने समूचे व्यक्तित्व का वस्तुनिष्ठ चित्र आना चाहिए। इसके अतिरिक्त जीवन में कुछ मूलभूत सद्गुणों का आचरण और विकास भी होना चाहिए। स्वयं के रूपान्तरण की प्रक्रिया इसी प्रकार आगे बढ़ती है।

– सितम्बर 1980, ज़िनाल, स्विट्ज़रलैंड

मनोविश्लेषण और मन

अभी मनोविश्लेषण का विज्ञान अपनी किशोरावस्था में है। इसने कुछ हद तक आधुनिक संस्कृति को एक प्रकार का दिशा-निर्देश प्रदान किया है। विशेष रूप से उन स्थानों के लोगों को, जहाँ उन्हें अपनी अति व्यस्तता के कारण आत्मावलोकन का समय नहीं मिल पाता है। हम दुनियादारी तथा स्वयं में इतने अधिक व्यस्त रहते हैं कि हमारी विचार प्रक्रियाओं की क्या प्रतिक्रिया होती है, इस बात का पता लगाने के लिये हमारे पास समय नहीं होता। इसलिए मनोविश्लेषण की तकनीक ने कार्य-कारण की प्रक्रिया से हमें अवगत कराया है।

हमारे मन में उठने वाला प्रत्येक विचार एक कार्य होता है जिसका एक तात्कालिक और एक दूरगामी कारण होता है। यह भी कि जो विचार मेरे मन में आता है, वह मात्र संयोगवश अथवा अकस्मात् नहीं आता। इसलिए हमें कार्य-कारण की शृंखला का विश्लेषण करना पड़ता है। अब इस शृंखला को आप मन की ऊपरी सतहों पर नहीं खोज सकते। इसका स्रोत काफी गहराई में छिपा होता है। हो सकता है कि भय की कुण्ठा का तात्कालिक कारण वह न हो, जो प्रत्यक्ष दिखाई पड़ता है, बल्कि उसका कारण पूर्व जन्म में अथवा बाल्यकाल के किसी अनुभव में छिपा हो। इसलिए वर्तमान में मेरे मानसिक व्यवहार का कोई तात्कालिक कारण होना आवश्यक नहीं है। उसका कारण मन की अकूत गहराई में खोजा जाना चाहिए। इसी कारण आधुनिक मनोविश्लेषण की अपनी सीमाएँ हैं। परन्तु इसके साथ ही, जैसा कि मैंने आपको प्रारम्भ में बताया है, मनोविश्लेषण ने वर्तमान युग तथा संस्कृति को एक दिशा प्रदान की है।

तंत्र विज्ञान में आत्म-मनोविश्लेषण की तकनीक का उल्लेख मिलता है। तंत्र में हमें जितने भी देवी-देवता मिलते हैं, वे एक प्रकार के रासायनिक उत्प्रेरक होते हैं। आइये, इसे थोड़ा विस्तारपूर्वक समझने का प्रयास करें। किसी विचार विशेष का विश्लेषण करने के लिए आपको उसके कारण तक पहुँचना होता है। अब उसके आधारभूत कारण को उत्प्रेरित करने के लिए कुछ-न-कुछ तो करना ही होगा। इसलिए तंत्र में मन के गहन स्तरों को प्रेरित करने के लिये, उनमें हलचल उत्पन्न करने के लिये अन्यान्य प्रतीकों का प्रयोग होता है।

आपमें से जिन्होंने रसायन-विज्ञान का अध्ययन किया है, मेरी बातों को समुचित ढंग से समझ सकेंगे। जब आपको किसी पदार्थ का विश्लेषण करना होता है तो आप उस पर कुछ निश्चित रासायनिक प्रक्रियाएँ करते हैं। यह एक सामान्य-सा सूत्र है। इसी प्रकार जब आपको अपने विचारों का विश्लेषण करना हो तो कुछ इसी प्रकार की प्रक्रिया अपनानी पड़ती है।

किसी व्यक्ति की मानसिक अवस्था का एकाएक पता लगाना बड़ा कठिन होता है, क्योंकि अक्सर उसके विचारों का स्वरूप टूटा-फूटा होता है। इसका तात्पर्य यह कि जो विचार आपके मन में आता है वह आपकी मनःस्थिति का सच्चा प्रतिनिधि नहीं होता। उदाहरण के लिये, आप अपने बच्चे को बहुत प्यार करते हैं, परन्तु कभी-कभी आप उसके प्रति बड़े कठोर हो जाते हैं। आप मेरा मतलब समझ रहे हैं न? आपके विचार यह व्यक्त नहीं करते कि आपके मन में क्या है। आप सिर्फ विचार को देखकर यह नहीं बता सकते कि उसके पीछे कौन-सा मूल कारण है। इसलिए जो भी विचार उपस्थित हों, किसी प्रतीक के माध्यम से उसकी जाँच-पड़ताल की जाय।

तंत्र में जिन प्रतीकों का प्रयोग होता है उनमें यंत्र, मण्डल, देवी तथा देवता आदि सम्मिलित हैं। जब कोई विचार इन प्रतीकों से जोड़ा जाता है तो मानसिक अवस्था की अभिव्यक्ति होने लगती है। इस प्रकार मनोविश्लेषण के विज्ञान में ऐसी अनेक बातें भरी पड़ी हैं जिनका उपयोग कर हम अनेक कार्य कर सकते हैं, परन्तु एक महत्त्वपूर्ण बात याद रखिये कि जहाँ मनोविश्लेषण की सीमाएँ समाप्त होती हैं, वहाँ से योग प्रारम्भ होता है। जिन आधुनिक देशों में दीर्घकाल से मनोविश्लेषण की तकनीकों का व्यवहार होता आया है, वे अब अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच चुकी हैं। अब उस बिन्दु से आगे का कार्य योग ने प्रारम्भ कर दिया है।

मन की पाँच अवस्थाएँ और उन पर तीन गुणों का प्रभाव

मन के विषय को विस्तारपूर्वक समझने के लिये आप महर्षि पतंजलि के योग सूत्रों को अच्छी तरह पढ़ें। बेहतर होगा कि आप इन सूत्रों पर जो भाष्य लिखे गये हैं, उन्हें पढ़ें। अपने ग्रन्थ 'मुक्ति के चार सोपान' में मैंने इन सूत्रों पर भाष्य लिखा है। मन एक निरन्तर विकासशील तत्त्व है तथा उसकी पाँच अवस्थाएँ हैं। अविकसित मन पहली अवस्था है। मन की विक्षिप्तता दूसरी, मन की चंचलता तीसरी, मन की एकाग्रता चौथी और नियंत्रित मन पाँचवीं अवस्था है। जिस प्रकार बाल्यकाल, युवावस्था, प्रौढ़ावस्था और वृद्धावस्था शरीर के विकास की अवस्थाएँ हैं, उसी प्रकार मन की उपर्युक्त पाँच अवस्थाएँ उसके विकास की सूचक हैं।

जब मन तमोगुण के प्रभाव में रहता है, तो बड़ा निष्क्रिय और सुप्त होता है। जब उस पर रजो गुण हावी रहता है तो वह चंचल रहता है और जब उस

पर इन दोनों गुणों का मिला जुला प्रभाव रहता है तो मन विक्षिप्तावस्था में रहता है। दूसरी ओर यदि उस पर सत्त्वगुण हावी हो, तो वह पूरी तरह नियंत्रण में रहता है, परन्तु जब वह रजोगुण तथा सत्त्वगुण के मिले-जुले प्रभाव में रहता है, तो पूरी तरह एकाग्र होता है। अन्य शब्दों में इसे इस प्रकार कह सकते हैं कि मन की एकाग्रता के लिए रजोगुण तथा सत्त्वगुण का मिला-जुला प्रभाव उत्तरदायी है तथा नियंत्रित मन के लिए सत्त्वगुण, चंचल मन के लिए रजोगुण, विक्षिप्त मन के लिए तमोगुण तथा रजोगुण और सुप्त एवं निष्क्रिय मन के लिए तमोगुण का प्रभाव उत्तरदायी है।

तमोगुण, रजोगुण तथा सत्त्वगुण मूल प्रकृति के ही अंग हैं। यहाँ मूल प्रकृति से हमारा तात्पर्य प्रकृति के अभिव्यक्त स्वरूप से नहीं, बल्कि उसकी मूल अवस्था से है। मन का नियंत्रण एक प्राकृतिक प्रक्रिया है, जो प्रकृति से अलग नहीं है। ये तीन गुण जो प्रकृति की अवस्थाएँ कहलाते हैं, मन के व्यापारों को नियंत्रित करते हैं। समय-समय पर यही मन तीनों गुणों का क्रीड़ा-स्थल होता है। जब प्रकृति में रजोगुण अत्यधिक प्रभावशाली होता है तब उसके परिणामस्वरूप सृष्टि तथा विकास होता है। जब तमोगुण अधिक प्रभावी होता है तो प्रकृति की हर वस्तु स्थिर और निष्क्रिय होती है। सृजन की प्रक्रिया रुक जाती है, क्योंकि सृजन एक अव्यक्त स्थिति में रहता है।

पूरी सृष्टि, पूरा ब्रह्मांड अनन्त है। परन्तु इसके साथ-साथ अनगिनत सृष्टियाँ तथा ब्रह्मांड बनते और बिगड़ते हैं। लाखों ब्रह्माण्डों का सृजन अभी बाकी है। वे सब तामसिक अवस्था में हैं। इसीलिए शास्त्रों में कहा गया है – प्रकाश नहीं था, किसी भी वस्तु का अस्तित्व नहीं था, सब कुछ एकदम स्थिर था। इसे ही ब्रह्माण्ड की तमोगुणी अवस्था कहते हैं। तमोगुण से रजोगुण उत्पन्न होता है और जब उसकी प्रधानता होती है तो सृष्टि का निर्माण होता है। उसमें क्रिया होती है। इसे आप सृष्टि में सर्वत्र देख सकते हैं। मन तथा प्रकृति में भी यही क्रियाएँ होती हैं। रजोगुण से सत्त्वगुण उत्पन्न होता है, यह तमोगुण तथा रजोगुण की सन्तुलित तथा सामंजस्यपूर्ण अवस्था होती है।

मानव मन तथा कुण्डलिनी इसी विषय के अन्तर्गत आते हैं। जब कुण्डलिनी मूलाधार चक्र में रहती है तो वह तमोगुण में लिपटी होती है और अव्यक्त रहती है। परन्तु जब वह अभिव्यक्त होती है तो रजोगुण के प्रभाव में रहती है और जब वह सहस्रार चक्र में पहुँचकर स्थिर होती है तो उसमें सत्त्वगुण अधिक प्रभावी होता है।

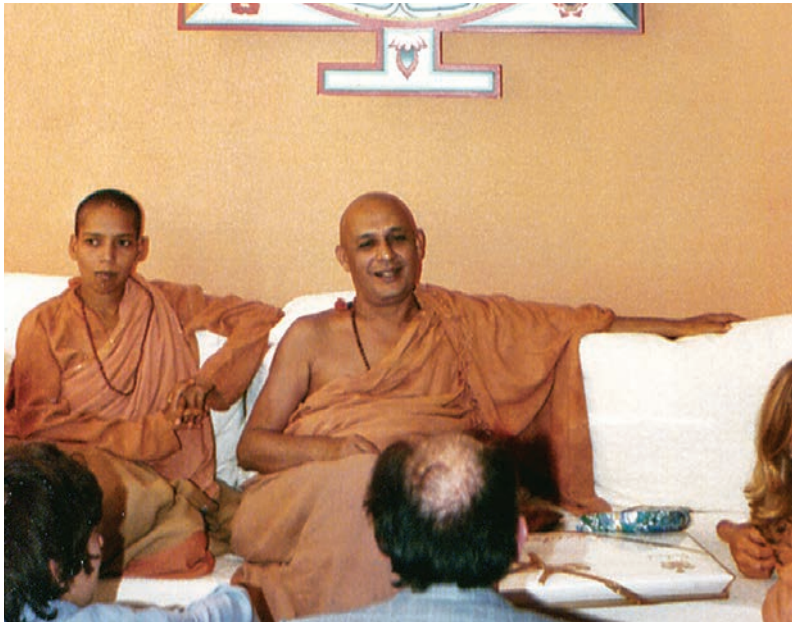

तंत्र शास्त्र में कहा गया है, 'दिव्यता तमोगुण से आवृत्त रहती है और प्रकाश अंधकार में लिपटा रहता है।' इसी तथ्य को कई प्रकार से कहा गया है, जैसे कुंडलिनी सोई है, वह अंधकार से आवृत्त है अथवा उसने तमोगुणी आवरण ओढ़ रखा है। इसका तात्पर्य यह कि मनुष्य की प्रज्ञा अथवा महती शक्ति अव्यक्त अवस्था में तमोगुण में छिपी रहती है। इसका तात्पर्य यह नहीं कि तमोगुण बुरा है। संस्कृत में 'तमस्' का अर्थ अंधकार होता है। अंधकार का सही मतलब क्या होता है? अंधकार वह अवस्था है जिसमें वस्तुओं को पहचाना नहीं जा सकता। पूर्ण अंधकार में मेज-कुर्सी, स्त्री-पुरुष, चाहे जो भी वस्तु रखी हो, आप उसकी पहचान नहीं कर सकते। तमोगुण की अवस्था में वस्तुओं की पहचान संभव नहीं होती, क्योंकि उसमें प्रकाश का अभाव होता है।

कुण्डलिनी भी इस समय अभिव्यक्त अवस्था में नहीं है। यह कुण्डलिनी क्या है? यह विकास प्रक्रिया का वह बिन्दु है जिसे पशु-चेतना का सर्वोच्च बिन्दु अथवा सहस्रार कह सकते हैं। जिस बिन्दु पर पशु जगत् की चेतना का विकास थम जाता है, वहीं से मानव शरीर में कुण्डलिनी की यात्रा प्रारम्भ होती है। मूलाधार के नीचे और सहस्रार के ऊपर अन्य चक्रों का भी अस्तित्व माना गया है। मूलाधार के नीचे के चक्रों का सम्बन्ध पशु जगत् से है। यहाँ

पशु शब्द का उपयोग भी उपयुक्त नहीं लगता, क्योंकि पशु की कल्पना आते ही हम चौपायों के बारे में सोचने लगते हैं। इसलिए मूलाधार के नीचे के चक्रों को हम अमानसिक चक्र कहते हैं। इसी प्रकार सहस्रार के ऊपर के चक्रों को भावातीत चक्र कहते हैं।

जब कुण्डलिनी तमोगुण से मुक्त होती है तो वह रजोगुण में लिप्त हो जाती है। उसमें गति होती है। वह सुषुम्ना के रास्ते ऊर्ध्वगामी हो आज्ञा चक्र तक और वहाँ से आगे बढ़कर सहस्रार चक्र में जा पहुँचती है। आप देखते हैं कि पशु जगत् के अस्तित्व का अन्तिम अध्याय मानसिक विकास है। जब मानव मन का पूर्ण विकास हो जाता है तो इसका तात्पर्य यह है कि आपने पशु जगत् का चक्र पूर्ण कर लिया है और उसके बाद नये मन की जागृति के साथ मानव चक्र प्रारम्भ होता है। इस नये मन का स्थान मूलाधार है।

कुण्डलिनी को अतिमानस् कह सकते हैं। आज हमारे पास जो मन है वह वास्तव में मानव मन नहीं कहा जा सकता। वह पशु मन की सर्वोच्च अवस्था कहलाती है। मानव मन का सम्बन्ध आध्यात्मिक चेतना से होता है। इसे एक सरल उदाहरण द्वारा इस प्रकार समझा जा सकता है – यदि आप गाड़ी से यात्रा करना चाहते हैं तो आप उसमें घोड़ा, बैल, गधा या कुत्ता जोत सकते हैं। आप चाहें तो अपनी गाड़ी को भाप अथवा डीजल के इंजन अथवा आण्विक ऊर्जा द्वारा चलने वाले इंजन से भी जोड़ सकते हैं। जिस प्रकार आपकी गाड़ी ऊर्जा के किसी भी माध्यम से चल सकती है, उसी प्रकार आपके जीवन की यात्रा भी पशु मन, अतिमानस् अथवा मन के बिना भी चल सकती है।

जब शरीर रूपी गाड़ी को चलाने के लिए मन की आवश्यकता नहीं होती तो आप कनिष्ठ देवता, अवतार अथवा ईश्वर पुत्र होते हैं। जब आप शरीर रूपी गाड़ी को अतिमानस् द्वारा चलाते हैं तो आप संत अथवा जीवनमुक्त कहलाते हैं। वास्तव में देखा जाय तो यही लोग मानव मन का उपयोग करते हैं। जब आपका शरीर निम्न मन द्वारा संचालित होता है तो आप सुखी-दुःखी, भाग्यवान्-अभागे अथवा गये-बीते व्यक्ति होते हैं, क्योंकि जो मन इस शरीर रूपी गाड़ी को चलाता है उसकी शक्ति सीमित होती है। वह पाँच इन्द्रियों पर निर्भर होता है और इन्द्रियों पर पूरा भरोसा नहीं किया जा सकता, क्योंकि वे कभी सहयोग तो कभी असहयोग करती हैं। अब आप निम्न मन, उच्च मन और बुद्धिहीनता की अवस्थाओं को स्पष्ट रूप से समझ गए होंगे।

– 7 सितम्बर 1980, शामराँद, फ्रांस

वासना और संस्कार

वासनाएँ प्रच्छन्न इच्छाएँ होती हैं। मानव मन में वासनाओं के अनेक स्तर होते हैं। भूख एक प्रकार की वासना है, तो निद्रा, धन-दौलत, पति-पत्नी, बच्चे, मित्र, नाम या यश की इच्छा वासनाओं के अन्य प्रकार हैं। ये इच्छाएँ मन के ऊपरी तल पर रहती हैं। ये सामान्य हैं, जिनसे हम परिचित हैं, परन्तु कुछ वासनाएँ मन की अतल गहराई में छिपी रहती हैं, जो कभी-कभी प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में स्वयं को व्यक्त करती हैं। ये छिपी इच्छाएँ वासना कहलाती हैं। जब आप अपनी इच्छाओं का दमन करते हैं तो प्रच्छन्न इच्छाएँ व्यक्त होने का साहस नहीं कर पातीं। वे या तो व्यक्त हो जाती हैं अथवा किसी माध्यम से उनकी दिशा बदल जाती है।

इच्छाओं का दमन प्रच्छन्न इच्छाओं को तीव्र बनाता है। ये छिपी इच्छाएँ स्वप्न, अंतर्दर्शन अथवा प्रत्याहार में व्यक्त होती हैं। इसके अतिरिक्त ये ध्यान की अवस्था में भी बार-बार व्यक्त होती हैं। यहाँ तक कि आत्म-साक्षात्कार के क्षण तक इनकी अभिव्यक्ति और क्षय की प्रक्रिया चलती रहती है।

जिस प्रकार बीज फूलों के अवशेष होते हैं, संस्कार भी अनुभवों के अवशेष हैं। मैं इन्हें और भी स्पष्ट ढंग से समझाने का प्रयत्न करूँगा। जमीन में एक शक्ति छुपी रहती है। गर्मी में जमीन सूख जाती हैं, उसमें घास तक नहीं उगती, परन्तु वर्षा की पहली बौछार के साथ ही चारों और घास उग आती है। यह कैसे होता है? जमीन में घास के बीज अवश्य रहे होंगे, तभी तो घास उग आई।

संस्कार हमारे प्रत्येक अनुभव के रूपान्तरित प्रतीक होते हैं। मेरे सामने जो टेपरिकॉर्डर रखा है, वह मेरी बातों को रिकॉर्ड कर रहा है और चारों ओर जो आवाजें हो रही हैं, उन्हें भी ग्रहण कर रहा है। ठीक इसी प्रकार मानव मस्तिष्क में भी कभी न रुकने वाला चेतना का टेपरिकॉर्डर गतिशील रहता है जो स्वाद, स्पर्श, ध्वनि, रूप और गंध सम्बन्धी प्रत्येक अनुभव को नोट करता है। यहाँ तक कि जब आप सोते हैं तब भी चेतना का यह टेपरिकॉर्डर कार्य करता रहता है, अथवा यदि आपको क्लोरोफॉर्म सुँघा कर संज्ञाशून्य कर दिया जाय, तब भी चेतना अपना कार्य करती रहती है। मनुष्य जब मरता है तथा उसका सूक्ष्म शरीर स्थूल शरीर से बाहर निकल जाता है, तभी चेतना के कार्यकलापों पर विराम लगता है।

चेतना द्वारा जो भी अनुभव ग्रहण किये जाते हैं वे रूपान्तरित होकर अन्य शरीर में संचित होते हैं। प्रथम तो वे स्थूल मन में रहते हैं और यदि आप उनका दोबारा उपयोग न करें, तो वे वहाँ से अवचेतन शरीर में स्थानान्तरित हो जाते हैं। यदि वहाँ भी उनका उपयोग न हो तो वे कारण शरीर में पहुँच जाते हैं। हमारा प्रत्येक अनुभव अमिट होता है। छोटे-से-छोटा अनुभव जिस पर आप ध्यान नहीं देते, वह भी चेतना में संचित हो जाता है।

एक बार एक व्यक्ति ने किसी मनोवैज्ञानिक से पूछा कि वह कभी भी अंडे के बारे में सोचता तक नहीं है, फिर भी क्यों उसे स्वप्न में बार-बार अंडा दिखता है। काफी खोजबीन करने पर मनोवैज्ञानिक ने यह पता लगाया कि जब यह व्यक्ति कार से कार्यालय जाता था, तो रास्ते में दाहिनी ओर एक दुकान पर अंडों की बिक्री के विज्ञापन पर उसकी दृष्टि जाती थी। यद्यपि उस व्यक्ति का इससे कुछ भी सरोकार नहीं था, परन्तु यह विज्ञापन उसकी बोध की परिधि के भीतर आता था, और चूँकि उसकी चेतना का कैमरा निरन्तर कार्यरत था, वह अपने क्षेत्र में आनेवाली प्रत्येक वस्तु का छायांकन करता था। इसलिए उसके स्वप्न में बार-बार अंडे आते थे।

अनुभव संस्कारों में परिणत होकर मन में संचित होते हैं। जब वे कारण शरीर में पहुँचते हैं तो आप उनको वैसा अनुभव नहीं कर पाते, जैसा देखा था। उनका अनुभव प्रतीक रूप में होता है। वे प्रतीक स्वप्न में भय, मृत्यु अथवा किसी भी अन्य रूप में अभिव्यक्त होते हैं। इन प्रतीकों को उन अनुभवों से जोड़ना बड़ा कठिन होता है, जो हमें किसी समय हुए थे। सामान्य रूप से सांख्य तथा वेदान्त में तथा विशेष रूप से हिन्दू-दर्शन में संस्कार मानव अनुभवों के अंतिम रूप होते हैं। हमारे समस्त कार्य संस्कारों से प्रभावित होते हैं। हमारे सुख और दुःख संस्कारों के कारण होते हैं। इसी प्रकार अच्छे-बुरे कर्म भी

संस्कारों से ही प्रभावित होते हैं। इतना ही नहीं, मनुष्य मायाजाल में भी इन्हीं के कारण फँसता है।

गीता में कहा गया है, 'जिस प्रकार अग्नि लकड़ियों को जलाकर भस्म कर देती है, ज्ञानाग्नि भी संस्कारों का मूलोच्छेदन करती है।' आपको किसी-न-किसी समय अपने समस्त संस्कारों को निःशेष करना ही होगा। योगशास्त्र का कथन है कि संस्कारों का क्षय करने के लिए आपको वासनाओं पर रोक लगानी होगी। अन्यथा आप निरन्तर संस्कारों में वृद्धि करते जायेंगे। वासनाएँ संस्कारों को जन्म देती हैं और संस्कारों के क्षय के लिये आपको अथक परिश्रम करना होगा। यह कोई आसान काम नहीं है। सैद्धान्तिक रूप से हम इसकी व्यापक चर्चा कर सकते हैं, परन्तु जब तक आपमें वासनाएँ मौजूद हैं तब तक आप संस्कारों को कैसे समाप्त करेंगे? और जब तक संस्कार हैं, वासनाओं को कैसे समाप्त करेंगे? वासना और संस्कार एक-दूसरे की सहायता करते हैं।

हजारों वर्षों से विद्वान् इस विषय पर चिन्तन करते आये हैं। वे सब-के-सब मनुष्य को वासना और संस्कार, इन दो राक्षसों के चंगुल से छुड़ाने का भरसक प्रयास करते रहे हैं। उन्होंने अनेक युक्तियाँ सुझायीं, परन्तु कुछ ही लोग इनसे लाभान्वित हो सके। ऐसा कोई रामबाण नहीं है जो सबको इस चक्र से उबार सके।

सभी मनुष्य विकास के विभिन्न बिन्दुओं पर है, यह बात बड़े महत्त्व की है। भले ही हमारे स्वरूप और चिन्तन में समानता हो, हमारी राष्ट्रीयता, जाति, धर्म आदि एक जैसे हों, परन्तु हमारी चेतना विकास के विभिन्न स्तरों पर रहती है। हमारे सामने बहुत लंबी यात्रा बाकी है और कोई भी दो व्यक्ति विकास-पथ के एक बिन्दु पर नहीं होते। हर व्यक्ति चल रहा है, परन्तु किसी भी बिन्दु पर दो व्यक्ति कंधे से कंधा मिलाकर नहीं चलते। जब वे यात्रा की मंजिल पर पहुँचते हैं तो सब एक हो जाते हैं, क्योंकि वहाँ सभी को मुक्ति प्राप्त हो जाती है, किन्तु प्रत्येक की मुक्ति का समय अलग होता है।

इस दिशा में हम क्या करें? प्रत्येक व्यक्ति को वासनाओं का परिष्करण, प्रच्छन्न इच्छाओं का दिशांतरण तथा संस्कारों का वीरतापूर्वक सामना करना चाहिए। चूँकि हम अपने प्रारब्ध को नहीं बदल सकते, इसलिये हमें उसे बिना किसी विरोध के स्वीकार करना चाहिए। यदि हमारा प्रारब्ध अनुकूल है, तो हमें विनीत होकर उसे स्वीकार करना चाहिए, और यदि वह प्रतिकूल है तो हमें धैर्यपूर्वक ईश्वरेच्छा के रूप में स्वीकार करना चाहिए। इससे संस्कारों

की चुभन कम होगी। याद रखिये, प्रारब्ध अपरिहार्य है। साधु, सन्त, गृहस्थ, संन्यासी और पापी, सभी को उसका सामना करना पड़ता है।

जन्म, जीवन, मृत्यु तथा पुनर्जन्म सभी प्रारब्ध हैं। सभी को उनका सामना करना पड़ता है। आप इनके चक्र से बाहर नहीं निकल सकते। परन्तु यह आपके वश में है कि आप इन झमेलों के बीच अपना विवेक बनाए रख सकें। शुभ तथा अशुभ प्रारब्ध दिन और रात की तरह आगे-पीछे चलते हैं। प्रतिकूल प्रारब्ध दुःख तथा अनुकूल प्रारब्ध सुख कहलाता है। जब हम सुखी होते हैं तो हम पर एक अजीब-सा नशा छा जाता है और हम यह मान बैठते हैं कि सुख स्थायी है। यहीं हम भूल जाते हैं कि सुख और दुःख आते-जाते रहते हैं।

जब हम सुखी हों तो हमारी मनोवृत्ति विनीत-विनम्र हो। हम संवेदनशील हों, क्योंकि यह निश्चित है कि दिन के पश्चात् रात अवश्य आती है। सुख के समय भी हम उसी तरह रहें जैसे दुःख के समय रहते थे। यदि हम ऐसा कर पाये तो प्रतिकूल प्रारब्ध के समय भी हमारा मानसिक संतुलन नहीं बिगड़ेगा।

परन्तु वास्तविकता कुछ और ही होती है। प्रायः यह देखने में आता है कि दुःख के समय लोग बुरी तरह टूट जाते हैं। हम ईश्वर, मानवता, प्रकृति और स्वयं को बुरा-भला कहते हैं। हम कहते हैं, 'हे ईश्वर! तू हमें क्यों दण्ड दे रहा है? मैंने ऐसा कौन-सा पाप किया है जिसकी मुझे यह सजा दी जा रही है? ईश्वर इतना निष्ठुर क्यों है?' साथ ही हम यह भी प्रार्थना करते हैं कि 'हे ईश्वर! इस अवस्था को समाप्त कर क्योंकि मैं इसे और अधिक नहीं सह सकता।'

इसके विपरीत जब सुख का काल आता है तो हम फूले नहीं समाते। हम गर्व के साथ कहते हैं, 'मैंने यह व्यवसाय जमाया है। यह जर्मन कार खरीदी है। कठिन परिश्रम तथा समझ-बूझ के साथ इस भव्य भवन का निर्माण किया है।' बताइये, इस समय ईश्वर का उल्लेख कहाँ है? दुःख के समय बार-बार ईश्वर याद आता है, परन्तु सुख में कहीं उसका नाम नहीं आता, बल्कि उसकी जगह, 'मैं' सर्वत्र छाया रहता है। इतना ही नहीं, जैसे ही सुख का समय आता है, हम पूरी तरह बदल जाते हैं। हमारी बातचीत का ढंग आदि पहले जैसे नहीं रहते। विचार सकारात्मक तथा वार्तालाप आनन्दमय हो जाता है, और हम यह भूल जाते हैं कि सुख के शुक्लपक्ष के बाद दुःख का कृष्णपक्ष भी जल्दी ही आने वाला है। कर्म, संस्कार और वासनाओं से मुक्त होने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि हम अपने प्रारब्ध के प्रति स्वस्थ तथा सन्तुलित रवैया अपनायें।

– सितम्बर 1980, ज़िनाल, स्विट्ज़रलैंड

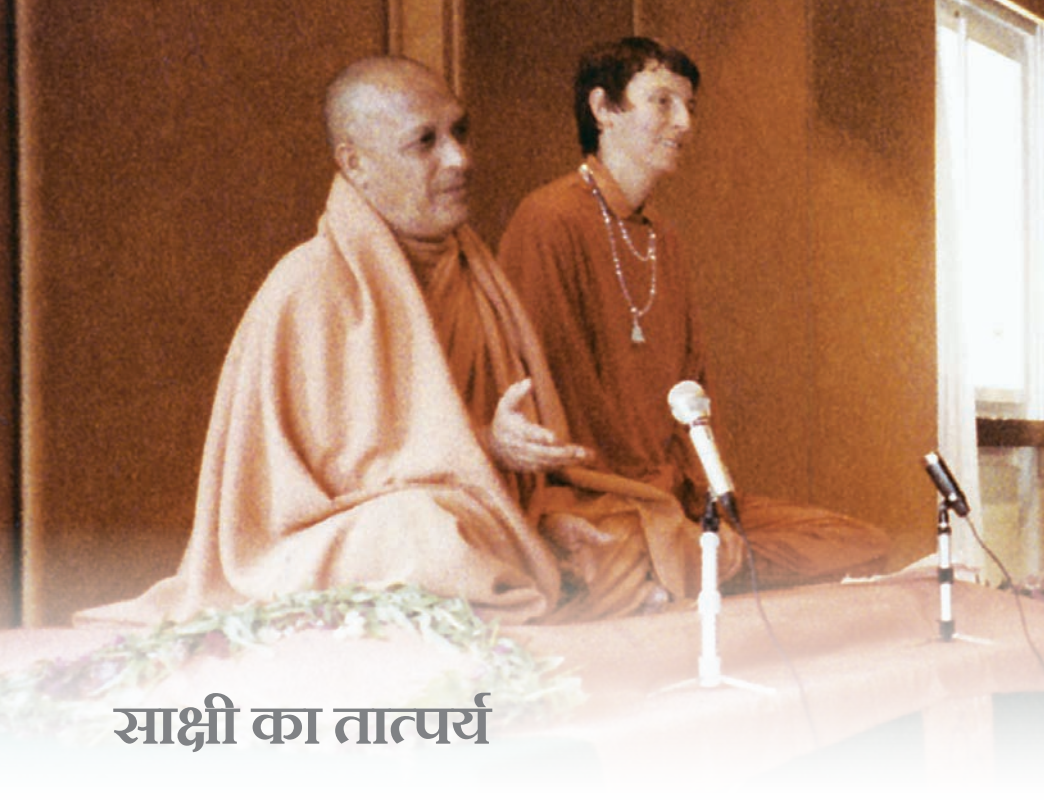

साक्षी का तात्पर्य

साक्षी वेदांत का शब्द है, जिसका अर्थ द्रष्टा या गवाह होता है। जब आप मंत्र का जप करते हैं तो जानते हैं कि आप मंत्र जप कर रहे हैं। आप यह भी जानते हैं कि आप जो कुछ कर रहे हैं, उसकी जानकारी आपके व्यक्तित्व के एक भाग को भी है। आपके अन्दर देखने वाला यही अंश साक्षी कहलाता है। जब आप शान्तिपूर्वक ध्यान करने के लिए बैठते हैं, तो कुछ समय के लिए अपने प्रतीक का अनुसरण करते हैं। कुछ समय बाद जब आपका प्रतीक स्थिर हो जाता है तब आप अपने अन्दर यह देखने का प्रयास करते हैं कि उस प्रतीक के प्रति कौन सजग है। कौन विचारों के प्रति सजग है, कौन लोभ के प्रति सजग है, और कौन ज्ञान के प्रति सजग है?

हममें से प्रत्येक व्यक्ति के भीतर साक्षी होता है, जो हमारे समस्त कार्यों तथा विचारों का आजीवन प्रत्यक्ष गवाह रहता है। भले ही आप गहरी नींद में सो रहे हों, तब भी आप इसके साक्षी हैं कि आप सोये थे। यदि मैं सुबह आपसे पूछूँ, 'रात में कैसी नींद आई?' तो आप कहेंगे, 'बहुत बढ़िया'। यदि आप सोए थे, तो आपने यह कैसे जाना? इसका कारण यह है कि उस समय आपके भीतर का साक्षी जाग रहा था।

चेतना के स्तरों में परिवर्तन होने पर भी व्यक्ति के भीतर का साक्षी बदलता नहीं है। अपने पचास-साठ वर्षों के जीवन में भी हम जानते हैं कि हम वही व्यक्ति हैं, जो प्रारम्भ में थे। इसी जानने वाले को साक्षी कहा जाता है। जब आप योग और ध्यान का अभ्यास करते हैं तो आपको लंबे समय तक अपने भीतर के इस साक्षी को देखना चाहिए और जब वह कुछ स्थिर हो जाये, तो पुनः अपने भीतर प्रविष्ट होकर उसे अनुभव करना चाहिए।

ध्यान में तीन घटक सन्निहित हैं – ध्येय, ध्याता और ध्यान की प्रक्रिया। प्रारम्भ में तो मात्र ध्येय और ध्यान की प्रक्रिया की जानकारी रहती है। एक बार ध्यान की प्रक्रिया के परे जाकर ध्यान को स्थिर कर लेने के बाद, धीरे-से पलटकर अपने भीतर के द्रष्टा को देखने का प्रयास करना चाहिए। ध्याता को देखते हुए, उस पर ध्यान कीजिये। इसे ही ध्यान में साक्षी कहा गया है।

प्रत्येक व्यक्ति अनिवार्य रूप से मानसिक तथा भावनात्मक उथल-पुथल का शिकार होता है। दुःख और सुख दोनों ही इसके कारण हो सकते हैं। जीवन में सफलता और असफलता दोनों ही मन को उद्वेलित करते हैं। जब भी आपको इस द्वन्द्वात्मक ज्वार-भाटे का सामना करना पड़े, थम जाइये, भीतर मुड़िये और अपने भीतर के उस अंश को पकड़िये, जिसे ये अनुभव हो रहे हैं। देखिए, आपके भीतर कौन दुःखी है, कौन सुख से कुलाचें भर

रहा है, कौन उदास होकर बुझा-बुझा रुदन कर रहा है? यदि आप स्वयं को दिनभर भागता, दौड़ता, व्यग्र, व्यस्त, प्रसन्न, उदास अथवा रोता-चिल्लाता देख सकें, तो आपके आश्चर्य का ठिकाना न रहेगा। एक समय ऐसा आता है जब आपको ये सब बातें व्यक्तिगत विशिष्टता के अतिरिक्त और कुछ नहीं लगतीं।

मैं नहीं समझ पाता कि आज से पैंतालीस-पचास वर्ष पूर्व मेरे साथ ऐसी ही घटना क्यों और कैसे घटित हुई। मैं एकाएक स्वयं को देखने लगा। मैं स्वयं को खेलता, पढ़ता, दौड़ता, सिनेमा तथा बाजार जाता देखने लगा। मैं स्वयं को लड़ता, प्रेम एवं घृणा करता, भिक्षा माँगता, खाता, पीता तथा सोता देखने लगा। यह सब कुछ इतना स्पष्ट दिखता था, मानो मैं टेलिविज़न देख रहा हूँ। मुझे यह सब बड़ा विचित्र लगता था। मैं स्वयं पर हँसता और मुझे ऐसा लगता, मानो मैं यह सब कुछ एक प्रकार के पागलपन के दौरे में कर रहा हूँ। परन्तु यह अनुभव अधिक दिनों तक नहीं टिका। मैं पुनः सामान्य हो गया और अपने रोजमर्रा के कार्य करने लगा। परन्तु इस अनुभव की अनेक बार पुनरावृत्ति हुई। मैं अपने समस्त कार्यकलापों का साक्षी बनता रहा। कर्म और साक्षी में इतना अधिक तादात्म्य रहता है कि कभी-कभी तो यह जानना ही मुश्किल हो जाता है कि हम क्या कर रहे हैं।

कल्पना कीजिये कि मैं छाया की तरह आपके साथ रहता हूँ। आप जो कुछ करते हैं, शयनागार से स्नानागार तक जो कुछ भी सोच-विचार करते हैं, मैं उन्हें जानता हूँ। बोलिये, ऐसी स्थिति में मैं आपके विषय में क्या सोचूँगा? मुझे आप बड़े दिलचस्प व्यक्ति लगेंगे। बस यही प्रयोग प्रत्येक व्यक्ति को अपने साथ करना चाहिए। इसे साक्षी होने की साधना कहते हैं और इसी का अभ्यास हम अन्तर्मौन के रूप में करते हैं।

अन्तर्मौन वह तकनीक है जिसमें आप अपने विचारों पर किसी प्रकार का अंकुश नहीं रखते। आप केवल अपने मन को वह सब कुछ देखने के लिए कहते हैं जो आपके भीतर चलता रहता है। आप क्या देख, सोच तथा अनुभव कर रहे हैं, आपका मानसिक तथा भावनात्मक व्यक्तित्व, आपके बौद्धिक अनुभव, आप उन सबके साक्षी बन जाते हैं। आप उन सबको एक साथ देखते हैं। इस प्रकार कर्मों का क्षय होता है तथा संतुलन स्थापित होता है।

– 31 अगस्त 1980, शामराँद, फ्रांस

सिद्धासन और हृदय

हाल ही में डॉक्टरों ने हमारे प्रजनन, चयापचय तथा हृदय के बीच महत्त्वपूर्ण सम्बन्धों की खोज की। रक्त में टेस्टोस्टेरॉन नामक पुरुष हॉर्मोन की अत्यधिक मात्रा व्यक्ति को हठधर्मी तथा व्यक्त अथवा अव्यक्त रूप से आक्रामक बना देती है। ऐसे व्यक्तियों में अचानक हृदयाघात की संभावना अधिक होती है। हृदय के ऊतकों तथा रक्तशिराओं में यह हॉर्मोन एकत्र होता रहता है जो हृदयाघात का प्रमुख कारण होता है।

रजोस्राव बन्द होने की अवस्था तक स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों में हृदयाघात की अधिक संभावना होती है, परन्तु जब स्त्रियाँ इस अवस्था को पार कर जाती हैं, तो स्त्री-पुरुष दोनों में हृदयाघात की संभावना बराबर हो जाती है। इसका सीधा अर्थ यह है कि स्त्री हॉर्मोन, स्त्री के हृदय को अपेक्षाकृत अधिक

प्राकृतिक सुरक्षा प्रदान करते हैं, जबकि पुरुष रक्त में टेस्टोस्टेरॉन हॉर्मोन की अधिकता उसे हृदयाघात की विपत्ति से नहीं बचा सकती। इससे बचने के लिए यह आवश्यक है कि पुरुषों के संवेगात्मक तथा यौन चयापचय को अधिकाधिक नियंत्रित तथा नियमित रखा जाय। इसके लिए हम पुरुषों को सिद्धासन में ध्यान करने की सलाह देते हैं। इसके लिये दोनों पैरों को सामने फैलाकर बैठ जाइये। दाहिने पैर को मोड़कर दाहिनी जाँघ से इस प्रकार सटा लीजिये कि एड़ी का दबाव पेरिनियम, यानि प्रजनन अंग तथा गुदाद्वार के बीच के भाग पर रहे। बायें पैर को मोड़िये, उसके पंजे को दाहिनी पिण्डली और जाँघ के बीच रखिये, ताकि बायीं एड़ी का दबाव प्रजनन अंग के ठीक ऊपर भग्नास्थि (प्यूबिक बोन) पर पड़े।

सिद्धासन मूलाधार तथा स्वाधिष्ठान चक्रों को स्थिर तथा संतुलित रखता है तथा प्राणशक्ति को ऊपर के उच्च केन्द्रों की ओर दिशान्तरित करता है। इन दो निम्न चक्रों में यदि ऊर्जा अवरोधित हो जाये तो अनेक शारीरिक व्याधियाँ उत्पन्न हो जाती हैं, जिन्हें उच्चतर आध्यात्मिक जीवन के लिए दूर करना आवश्यक है। मूलाधार में प्राणशक्ति का अपार भंडार निष्क्रिय, सुप्तावस्था में पड़ा रहता है। स्वाधिष्ठान हमारे यौन तथा संवेगात्मक प्रणाली का प्रेरक है। उसके माध्यम से हमारी मानसिक ऊर्जा अभिव्यक्त होती है। जब हमारे भावनात्मक जीवन का विस्तार इन दो चक्रों के परे नहीं होता तब उच्च रक्तचाप, हृदय की क्रियाओं में अनियमितता उत्पन्न होती है तथा हमारे जीवन का उद्देश्य अनिश्चत बना रहता है। हृदय में एक 'पीड़ा' बनी रहती है जिसके कारण वह क्षुद्र एवं अस्थायी भावनात्मक विचारों से परे अनुभवों की सच्चाई को नहीं जान पाता। लेकिन मानव हृदय एवं मन के उच्चतर अनुभव तब तक अगम्य ही रह जाते हैं, जब तक ऊर्जा को चेतना के उच्चतर केन्द्रों में ले जाकर स्थापित नहीं किया जाता। इस प्रकार, हृदय रोगों को विकासमूलक व्याधि माना जा सकता है, जहाँ हम भावनात्मक स्तर पर बन्धन के कारण पीड़ा का अनुभव करते हैं, जबकि हमारा अस्तित्व उस नित्यता-निरन्तरता की अनुभूति के लिए व्यथित रहता है जो भावनात्मक आसक्तियों से परे जाने के बाद उत्पन्न होता है।

हृदयरोग के विश्वविख्यात चिकित्सक, डॉक्टर क्रिश्चियन बर्नार्ड अपने रोगियों को हृदय के कार्यों में स्थिरता लाने हेतु सिद्धासन करने की सलाह देते हैं। यदि व्यक्ति किशोरावस्था के अंतिम चरण तथा पचीस वर्ष के पूर्व की अवस्था के बीच सिद्धासन सीख ले तो अधिक लाभदायक होता है,

क्योंकि यही वह अवस्था होती है जब भावनात्मक तथा यौन प्रवृत्तियाँ एवं मनोभाव अनियंत्रित होते हैं। इस अवस्था में सिद्धासन का अभ्यास आए दिन होने वाले स्वप्नदोष की रोकथाम भी करता है। यदि व्यक्ति आजीवन इसका अभ्यास करता रहे तो यह भावनात्मक क्षति से सुरक्षित रखता है और मनोभावों को स्थिर करता है जिससे हृदयाघात से बचा जा सकता है। हृदय तब सुरक्षित रह सकता है जब उसमें न तो भावनात्मक कुंठाओं का दमन हो और न ही उनकी अराजक अभिव्यक्ति हो। हृदय की सुरक्षा की कुंजी अपनी इच्छाओं, भावनाओं, आवेगों आदि की सावधानीपूर्वक नियंत्रित अभिव्यक्ति में है, और इसके लिए जीवन की विभिन्न अवस्थाओं में योग के निर्देशों और अभ्यासों का अनुसरण करना होगा। कम आयु से ही अपने दैनिक जीवन में आसन, प्राणायाम, जप, ध्यान आदि के समन्वित अभ्यास को स्थान देने से आगे चलकर रोगग्रस्त हृदय के बोझ से मुक्त रहा जा सकता है। और तभी भावनाएँ आजीवन सही दिशा में रचनात्मक ढंग से अभिव्यक्त होती रहेंगी।

यहाँ कोलेस्ट्रॉल की भूमिका को समझना भी आवश्यक है। इस वसीय तत्त्व से जनन तथा एड्रीनल ग्रंथियों में यौन हॉर्मोन बनते हैं। अंडकोश में शुक्राणुओं की उत्पत्ति के लिए भी कोलेस्ट्रॉल की आवश्यकता पड़ती है। लाइपो प्रोटीन तथा कोलेस्ट्रॉल वीर्य की उत्पत्ति के लिए भी अनिवार्य हैं। यही शुक्राणु को तेज गति से आगे बढ़ने की ऊर्जा भी प्रदान करते हैं।

यदि भावनात्मक तथा प्रजनन सम्बन्धी चयापचय अनियंत्रित तथा अव्यवस्थित हो तो शुक्राणुओं की उत्पत्ति भी शीघ्रता से होने लगेगी, जिसके लिए बड़ी मात्रा में ऊर्जा की आवश्यकता पड़ेगी। इस अतिरिक्त ऊर्जा के लिए कोलेस्ट्रॉल तथा प्रोटीन के उच्च स्तर की आवश्यकता होगी, जिसका स्रोत भोजन है। अतएव आपको अपनी खुराक में प्रोटीन और वसा की मात्रा बढ़ानी होगी। पुनः इनके चयापचय की प्रक्रिया तथा तापमान में वृद्धि होगी। हृदय तथा पाचन-संस्थान के अंगों, जैसे यकृत, गुर्दे, उत्सर्जक अंगों, आँतों तथा स्वेद ग्रंथियों पर अतिरिक्त बोझ पड़ेगा। निरंतर पड़ने वाले इस बोझ तथा दबाव की परिणति हृदयाघात के रूप में होती है।

अतएव यदि हम शरीर को सुरक्षित रखना चाहते हैं तो हमें अपने भावनात्मक चयापचय को नियंत्रित एवं नियमित रखना होगा। इसके लिए हमें दोतरफा कवच डालना होगा। सर्वप्रथम हमें भोजन में संयम बरतना होगा और इसके लिए वसा तथा प्रोटीन की मात्रा को घटाना होगा। दूसरी ओर,

आत्मज्ञान, संयम, आत्माभिव्यक्ति आदि को विकसित करना होगा। इसके लिए मैं आपको जीवन के संघर्षों और समस्याओं के बीच रहते हुए योग का राजमार्ग अपनाने की सलाह दूँगा। समाज में कुल मिलाकर ये उपाय ही हृदय रोगों के सर्वोत्तम अवरोधक हैं।

इस संदर्भ में केवल पारंपरिक धर्म के निर्देशों का अनुसरण पर्याप्त नहीं होगा। एक सीमा तक ये मानसिक तथा भावनात्मक सुरक्षा प्रदान कर सकते हैं, परन्तु वास्तव में वे दमनकारी तथा विकास-रोधी हैं, क्योंकि धर्म हमें अपनी प्रकृति की मूल प्रवृत्तियों का सामना करने से रोकता है। पारंपरिक धर्म मात्र निर्देश और अवधारणाएँ प्रदान करता है, परन्तु योग हमें कुछ ऐसे मनोकायिक अभ्यास बताता है जो हमारी भावनात्मक ऊर्जा को सही दिशा प्रदान करते हैं। ऐसा प्रबुद्ध भावनात्मक एवं यौन जीवन जो मानसिक द्वन्द्वों तथा शारीरिक क्लान्ति से मुक्त हो, उसकी कुंजी सामान्य जीवन के अनुभवों के साथ योग के अभ्यासों में मिलती है। योग के लिए संसार को त्यागने की आवश्यकता नहीं है, बल्कि यह अभ्यासी को जीवन के सभी पक्षों का पूरा आनन्द प्रदान करता है। यदि हम जीवन में प्रगति एवं विकास के इच्छुक हैं तो जीवन के अनुभवों का उपभोग करना तथा उन्हें समझना होगा। मतों तथा सिद्धान्तों का अंधानुकरण विकास की प्रक्रिया को अवरुद्ध करता है, मानसिक तथा शारीरिक व्याधियों को जन्म देता है। परन्तु योग जीवन को पूर्णतः जीने तथा अपनी विकास-यात्रा को पूरा करने के उदात्त उपाय बताता है।

– सितम्बर 1980, ज़िनाल, स्विट्ज़रलैण्ड

योगनिद्रा तथा नकारात्मकता

मन में नकारात्मक विचारों का उठना अस्वाभाविक नहीं है। वस्तुतः जब ये आते हैं तो यह एक शुभ लक्षण होता है। इन विचारों का स्रोत कहाँ है? ये आपके भीतर से ही उठते हैं। इनका उठना इस बात का प्रमाण है कि आपकी चेतना में नकारात्मक तत्त्व उपस्थित हैं। जब कभी आपको उल्टी आती है, तब यह किस बात का संकेत है? उल्टी आना यह सिद्ध करता है कि आपके पेट में बिना पचा हुआ अम्लीय पदार्थ बाहर निकलने का प्रयास कर रहा है। इसे बाहर निकलना चाहिए या नहीं? स्वास्थ्य की दृष्टि से मैं कहूँगा कि इसे बाहर निकल जाना चाहिए। विषाक्त तत्त्वों को बाहर निकलना ही चाहिए, भले ही वे शरीर, मन अथवा भावनाओं में ही क्यों न हों।

अतएव योगनिद्रा में जब भी आपके मन में नकारात्मक विचार आयें, उनसे परेशान न होइये। उन्हें उभरने और निकलने दीजिये। हो सकता है, इनके कारण प्रारम्भ में आपको ऐसा लगे कि योगनिद्रा सफल नहीं हो रही है। परन्तु कुछ समय तक धैर्यपूर्वक अभ्यास करने के बाद मन की उथल-पुथल तथा नकारात्मक विचार समाप्त हो जायेंगे तथा आपको अवर्णनीय शान्ति और विश्राम की अनुभूति होगी।

मनुष्य की सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि उसके पास ऐसा कोई अचूक उपाय नहीं है जिसके द्वारा वह अपने मन के इन अशुभ तथा नकारात्मक विचारों से सफलतापूर्वक मुक्त हो सके। वस्तुतः उसकी इस परेशानी का मूल कारण धर्म में निहित है, क्योंकि धर्मों ने वैज्ञानिक पद्धति से इस समस्या का समाधान निकालने के स्थान पर हमेशा निषेधात्मक आदेश दिए हैं। इस तरह मत सोचो, ऐसा मत करो, अमुक बात से सहमति व्यक्त मत करो आदि-आदि। धर्म की इस वृत्ति को आप दमनात्मक नहीं, तो और क्या कहेंगे? इस तरीके से मनुष्य तथा समाज में अपेक्षित सुधार नहीं लाया जा सकता। इन समस्याओं से निबटने के लिये व्यवस्थित तथा वैज्ञानिक युक्तियाँ होनी चाहिए।

कल्पना कीजिए, आपके देश में चालीस हजार अपराधी हैं। क्या आप उन सबको खोज-खोज कर मौत के घाट उतार देंगे? क्या इस तरीके से आपके समाज तथा देश के अपराध की प्रवृत्ति का पूर्णतः उन्मूलन हो जायेगा? कदापि नहीं, क्योंकि अपराधवृत्ति एक निरंतर बढ़ने वाली प्रक्रिया है। ठीक उसी प्रकार

मन की नकारात्मकता भी निरंतर बढ़ती रहने वाली प्रक्रिया है। इसके लिए आपको अपने भीतर समझ तथा स्वस्थ मनोवृत्ति विकसित करनी पड़ेगी।

नकारात्मक विचारों के विषय में कौन सोचता है? कौन सत्संकल्प करता है? उन दोनों का कर्ता आपका मन ही है। एक क्षण में वह एक महान् संकल्प लेता है, दूसरे ही क्षण उस मन में नकारात्मक विचार आ जाते हैं जिन्हें आप बाहर निकालने का प्रयास करने लगते हैं। इस तरह आप स्वयं से लड़ते तथा दुश्मनी मोल लेते हैं, आपके व्यक्तित्व के दो भिन्न भाग आपस में संघर्षरत हो जाते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि आप अपने व्यक्तित्व को विखण्डित कर रहे हैं। आपके व्यक्तित्व में किसी प्रकार का द्वन्द्व या संघर्ष, कोई शत्रुता या विरोध नहीं होना चाहिए। व्यक्तित्व में सामंजस्य होना चाहिए। यदि आपके दो पुत्र हैं, उनमें से एक अच्छा तथा दूसरा बुरा है तो आप क्या करेंगे? आप तो दोनों को समान रूप से प्यार करेंगे। आप दोनों का पालन-पोषण करेंगे और दोनों को ही अपनी संतान मानते रहेंगे। क्या आप बुरे बच्चे को गोली से उड़ा देंगे? कदापि नहीं।

मन की भी शुभ तथा अशुभ वृत्तियाँ होती हैं। राजयोग सूत्रों में महर्षि पतंजलि कहते हैं कि मन की वृत्तियों को नियंत्रित रखना चाहिए। आप यह कैसे करेंगे? मोटरगाड़ी में ब्रेक की जैसी व्यवस्था होती है, वैसी ही व्यवस्था आपको अपने मन के लिए भी करनी होगी। आप अपनी गाड़ी के ब्रेक को हमेशा उपयोग में नहीं लाते। उसका उपयोग तभी किया जाता है, जब खतरा सामने होता है। ठीक इसी प्रकार जब आपके विचार आपके जीवन में दुर्घटना जैसी स्थिति उत्पन्न करने वाले हों तब अवश्य ही उन पर ब्रेक लगा दीजिये। बहुधा हमारे विचार मात्र कल्पना होते हैं। उन्हें अबोध नकारात्मक विचार कहा जाता है। अब, इन अबोध और अहानिकारक विचारों से क्यों लड़ना? यदि आपकी कार आराम से चली जा रही है, लालबत्ती का संकेत नहीं है, सड़क एकदम साफ है तो ब्रेक का इस्तेमाल क्यों करेंगे? यदि आप निरापद रास्ते पर तेज दौड़ती गाड़ी में ब्रेक लगायेंगे तो वह कभी उलट भी जायेगी।

इसलिए जब योगनिद्रा या दैनिक आध्यात्मिक साधना या रोजमर्रा के जीवन में ऐसे विचार उठते हैं तब आपको अपने विवेक का इस्तेमाल करना चाहिए कि कौन-से नकारात्मक विचार अहानिकर हैं और कौन-से हानिकर सिद्ध हो सकते हैं। यदि वे विचार अहानिकर हैं तो उन्हें उभरने

तथा निकलने दीजिये। इस तरह आप अपने मन तथा भावनाओं के रेचन द्वारा मन को हल्का कर सकेंगे। आप न भी चाहें तो प्रकृति यह कार्य करेगी ही। स्वप्न इसी प्राकृतिक प्रक्रिया का एक आयाम है। यदि आप स्वप्नों को किसी प्रकार रोकेंगे तो निश्चय ही पागल हो जायेंगे। स्वप्न अवचेतन की अभिव्यक्ति तथा अनावश्यक कचरा बाहर निकालने की स्वस्थ प्राकृतिक प्रक्रिया है। हमारी कल्पनाएँ, दिवास्वप्न तथा हमारे द्वारा बनाये गये हवाई महल भी यही कार्य करते हैं।

क्या आप जानते हैं कि दिवास्वप्न किसे कहते हैं? वह स्वप्न देखने वाला आपका मन ही है। इन कल्पनाओं में आप चन्द्रमा या मंगल जैसे ग्रहों तक की यात्रा कर आते हैं। लखपति, करोड़पति, फोर्ड, टाटा, बिड़ला, राष्ट्रपति, विश्वसुन्दरी तथा प्रधानमंत्री आदि क्या-क्या नहीं बन जाते हैं! ऐसी कल्पनाएँ स्वस्थ मन के विकास के लिए आवश्यक हैं। ध्यान की अवस्था में भी इन्हें नहीं रोकना चाहिए। इस बात को अच्छी तरह स्मरण रखिये। हो सकता है, आप अपने विचारों एवं कल्पनाओं से ऊब जायें और कहें, 'मैं ध्यान नहीं कर पा रहा हूँ। जब भी मैं प्रयास करता हूँ, मेरा मन भटक जाता है।' जो भी हो, बुद्धिमानों ने कहा है कि मानव चेतना के विकास के लिए कल्पनाएँ महत्त्वपूर्ण हैं।

कुछ नकारात्मक कल्पनाएँ भी होती हैं, जैसे किसी की हत्या, बलात्कार, ठगी या चोरी, किसी से बदला लेने या आत्महत्या करने की कल्पना। ऐसे विचार सबके मन में यदा-कदा उठते हैं। ये कभी धीरे-धीरे आते हैं और कभी अचानक आ जाते हैं। कुछ लोगों में ये कम उम्र में, तो कुछ में परिपक्व होने के बाद आते हैं। यदि आप इन्हें दबायेंगे तो ये प्रौढ़ावस्था में भी आ जाते हैं। प्रायः चालीस-पैंतालिस की आयु में अचानक नकारात्मक विचारों का विस्फोट होता है।

मैं नकारात्मक विचारों के प्रति एक निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ। प्राकृतिक प्रक्रिया में हस्तक्षेप नहीं करना ही अच्छा है। यह पूरी तरह भूल जाइये कि इस विषय में धर्मों ने क्या कहा है। यदि आप योगनिद्रा का अभ्यास कर रहे हैं और अचानक आपके मन में इन विचारों का ज्वार उठता है तो परेशान न हों। योगनिद्रा के अभ्यास को दिनों, सप्ताहों और महीनों तक जारी रखें। निश्चित रूप से एक दिन उनका अन्त होगा और आप अपने अभ्यास में सफल होंगे।

– 7 सितम्बर 1980, शामराँद, फ्रांस

दान सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण सूचना

आश्रम के लिए दान राशि केवल निम्नलिखित श्रेणियों के अन्तर्गत स्वीकार की जाएगी –

1. **सामान्य दान**
   जो बिहार स्कूल ऑफ योग, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट अथवा योग रिसर्च फाउण्डेशन को दिया जा सकता है और जिसका उपयोग यौगिक गतिविधियों के विकास एवं संवर्द्धन के लिए किया जाएगा।

2. **मूलधन निधि के लिए दान**
   बिहार स्कूल ऑफ योग, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट अथवा योग रिसर्च फाउण्डेशन की मूलधन निधि के लिए। **मूलधन निधि** से प्राप्त ब्याज राशि का उपयोग संस्था/न्यास की सभी गतिविधियों के लिए किया जाएगा।

3. **सी.एस.आर. दान**
   जिसका उपयोग सी.एस.आर. गतिविधियों के लिए किया जाएगा।

इसलिए भक्तों से निवेदन है कि वे केवल उपर्युक्त श्रेणियों के अन्तर्गत अपनी दान राशि भेजें।

बिहार स्कूल ऑफ योग को दान 'SB Collect Online Donation Facility' के माध्यम से निम्नलिखित वेबसाइट द्वारा सीधे दिया जा सकता है – **https://www.onlinesbi.sbi/sbicollect/icollecthome.htm?corpID=2277965**

आप चेक, डी.डी. अथवा ई.एम.ओ. द्वारा भी दान दे सकते हैं जो **बिहार स्कूल ऑफ योग**, **बिहार योग भारती**, **योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट** या **योग रिसर्च फाउण्डेशन** के नाम से हो और मुंगेर में देय हो।

दान राशि के साथ एक पत्र संलग्न रहे जिसमें आपके दान का प्रयोजन, डाक पता, फोन नम्बर, ई-मेल और PAN नम्बर स्पष्ट हों।

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट

सत्यम् गाथा – धन्यवाद सत्यम्

पृष्ठ 24

श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती तथा श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती को समर्पित सत्यम् गाथाएँ उनकी आध्यात्मिक एवं यौगिक शिक्षाओं को सरल, रोचक ढंग से दुनियाभर के लोगों तक पहुँचाने का माध्यम हैं।

रियो नाम का एक छोटा-सा पंछी संयोगवश आश्रम आ पहुँचता है जहाँ उसकी भेंट पीताम्बर से होती है। पीताम्बर के संग वार्तालाप के क्रम में रियो को श्री स्वामी सत्यानन्द जी की अनेक प्रेरक शिक्षाएँ मिलती हैं और उसके मायूस, निराशापूर्ण जीवन में आशा की उज्ज्वल किरणें भर जाती हैं। यही नहीं, उसे सत्यम् का प्रत्यक्ष दर्शन और आशीर्वाद भी प्राप्त होता है!

नया प्रकाशन

पुस्तकों की मूल्य सूची एवं क्रयादेश प्रपत्र प्राप्त करने के लिए सम्पर्क करें –
योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, गरुड विष्णु, पी.ओ. गंगा दर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201
दूरभाष : 91–6344–222430, 9162783904

जवाब के लिए अपना पता लिखा, डाकटिकट लगा लिफाफा भेजें, अन्यथा आपके आवेदन पर विचार नहीं किया जाएगा

वेबसाइट और एप्प

BIHAR YOGA

www.biharyoga.net

बिहार योग पद्धति की मुख्य वेबसाइट पर बिहार योग, बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान संबंधी जानकारियाँ उपलब्ध हैं।

सत्यम् योग प्रसाद

बिहार योग परम्परा की समस्त प्रकाशित कृतियाँ *satyamyogaprasad.net* वेबसाइट पर तथा *Android* एवं *iOS* उपकरणों पर एप्प के रूप में प्रस्तुत हैं।

यौगिक जीवनशैली साधना

biharyoga.net तथा *satyamyogaprasad.net* पर स्वस्थ जीवन हेतु यौगिक जीवनशैली साधना उपलब्ध है।

योगा एवं योगविद्या ऑनलाइन

www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yoga-magazines/
www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yogavidya/

योगा एवं योगविद्या पत्रिकाएँ *Android* एवं *iOS* उपकरणों पर एप्प के रूप में भी उपलब्ध हैं।

अन्य एप्प (Android एवं iOS उपकरणों के लिए)

- योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट की लोकप्रिय पुस्तक, ए.पी.एम.बी. अब सुविधाजनक एप्प के रूप में उपलब्ध है
- *Bihar Yoga* एप्प साधकों के लिए प्राचीन और नवीन यौगिक ज्ञान आधुनिक ढंग से पहुँचाता है
- *For Frontline Heroes* एप्प कोरोनावायरस के विरुद्ध अभियान में संघर्षरत कार्यकर्ताओं के लिए सरल योग अभ्यास प्रस्तुत करता है जो महामारी से उत्पन्न तनाव को सम्हालने में सहायक हैं

- Registered with the Department of Post, India
  Under No. MGR-01/2020-23
  Office of posting: Ganga Darshan TSO
  Date of posting: 1st-7th of every month
- Registered with the Registrar of Newspapers, India
  Under No. BIHHIN/2002/6306

issn 0972-5725

योगपीठ कार्यक्रम एवं योग विद्या प्रशिक्षण 2023

बिहार योग विद्यालय योगविद्या प्रशिक्षण

जुलाई 2022–जुलाई 2024	आश्रम जीवन प्रशिक्षण
जुलाई 1–दिसम्बर 31	योग चक्र अनुभव
अक्टूबर 4–12	राज योग एवं भक्ति योग प्रशिक्षण
अक्टूबर 15–29	प्रगतिशील योग विद्या प्रशिक्षण
नवम्बर 20–29	क्रिया योग एवं ज्ञान योग प्रशिक्षण

बिहार योग भारती योगविद्या प्रशिक्षण

अगस्त 7–अक्टूबर 7	द्विमासिक यौगिक अध्ययन (हिन्दी)

कार्यक्रम

नवम्बर 4-12	मुंगेर योग संगोष्ठी 2

मासिक कार्यक्रम

प्रत्येक शनिवार	महामृत्युंजय हवन
प्रत्येक एकादशी	भगवद् गीता पाठ
प्रत्येक पूर्णिमा	सुन्दरकाण्ड पाठ
प्रत्येक 4, 5 एवं 6 तारीख	गुरु भक्ति योग
प्रत्येक 12 तारीख	अखण्ड रामचरितमानस पाठ